रचना संसार

प्रचीन काल की प्रमुख पुस्तकों का परिचय

Rachna Sansar: Introduction to Major books of Ancient Times

पंकज श्रीवास्तव

रचना संसार : प्राचीन काल की प्रमुख पुस्तकों का परिचय

रचना संसार : प्राचीन काल की प्रमुख पुस्तकों का परिचय

(Rachna Sansar: Introduction to Major books of Ancient Times)

पंकज श्रीवास्तव

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-6109-1

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

अष्टाध्यायी महर्षि पाणिनि द्वारा रचित संस्कृत व्याकरण का एक अत्यंत प्राचीन ग्रंथ (700 ई. पू.) है। इसमें आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं, प्रत्येक पाद में 38 से 220 तक सूत्र हैं। इस प्रकार अष्टाध्यायी में आठ अध्याय, बत्तीस पाद और सब मिलाकर लगभग 4000 सूत्र हैं। अष्टाध्यायी पर महामुनि कात्यायन का विस्तृत वार्तिक ग्रन्थ है और सूत्र तथा वार्तिकों पर भगवान पतंजलि का विशद विवरणात्मक ग्रन्थ महाभाष्य है। संक्षेप में सूत्र, वार्तिक एवं महाभाष्य तीनों सम्मिलित रूप में 'पाणिनीय व्याकरण' कहलाता है और सूत्रकार पाणिनी, वार्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतंजलि-तीनों व्याकरण के 'त्रिमुनि' कहलाते हैं।

जीवन को विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य को किस प्रकार आचरण करना चाहिए, रामायण इसके लिए आदर्श ग्रंथ है। सर्वप्रथम रामायण की रचना कविवर वाल्मीकि ने की थी। तदुपरांत राम के जीवन को आधार बनाकर अनेक राम-काव्य लिखे गये। हिन्दी में भी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' जैसे–अद्वितीय महा-काव्य की रचना की।

महाभारत एक बुनियादी अर्थ में रामायण से अलग है, जहां तक बाद में आर्यों और गैर-आर्यों के संघर्ष को दर्शाया गया है, पूर्व में पांडवों और कौरवों, दोनों आर्य लोगों के बीच संघर्ष की कहानी है। महाभारत की लड़ाई, जो कुरुक्षेत्र में लड़ी गई थी, में लगभग पूरे भारत के आर्य राजा शामिल थे।

अर्थशास्त्र, कौटिल्य या चाणक्य द्वारा रचित संस्कृत का एक ग्रन्थ है। इसमें राज्य व्यवस्था, कृषि, न्याय एवं राजनीति आदि के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। अपने समय का (राज्य-प्रबन्धन विषयक) यह प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसकी शैली उपदेशात्मक और सलाहात्मक (Instructional) है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् न केवल संस्कृत साहित्य का, अपितु विश्वसाहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। यह कालिदास की अन्तिम रचना है। इसके सात अंकों में राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय-कथा का वर्णन है। इसका कथानक महाभारत के आदि पर्व के शकुन्तलोपायान से लिया गया है।

शिशुपाल वध महाकवि माघ द्वारा रचित संस्कृत काव्य है। 20 सर्गों तथा 1800 अलंकारिक छन्दों में रचित यह ग्रन्थ संस्कृत के छः महाकाव्यों में गिना जाता है। इसमें कृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा का वर्णन है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**अष्टाध्यायी**	**1**
	अष्टाध्यायी	1
2.	**रामायण**	**9**
	रचना काल	11
	राम कथा	12
	संक्षेप में रामायण-कथा	13
	उत्तरकाण्ड	18
3.	**महाभारत**	**21**
	पांडुस और धृतराष्ट्र	22
	विभिन्न नाम	27
	पृष्ठभूमि और इतिहास	29
	आद्य भारत	38
4.	**अर्थशास्त्र**	**41**
	इतिहास	42
	'अर्थशास्त्र' का रचनाकार	46
	अन्य अर्थशास्त्र	51

5. अभिज्ञान शाकुन्तलम् **52**
मौलिक न होने पर भी मौलिक 53
6. मेघदूत **59**
विषय वस्तु 59
मेघदूत के स्रोत 61
रससृष्टि 65
7. रघुवंशम् **67**
परिचय 68
रघुवंश की कथा 71
रामायण और रघुवंश 72
8. नाट्य शास्त्र **76**
परिचय 77
9. पंचतन्त्र **82**
पंचतन्त्र का रचना काल 83
काकोलूकीय 86
10. शिशुपालवध **89**
परिचय 89
11. मालविकाग्निमित्रम् **92**
कथावस्तु 93
12. सूर्यसिद्धान्त **102**
पौलिष सिद्धान्त 102
ग्रहों के व्यास 107
13. गीतगोविन्द **109**
टीकाएँ 110
परिचय 112
14. कामसूत्र **119**
कामसूत्र-प्रणयन का प्रयोजन 120
संक्षिप्त परिचय 123
15. मनुस्मृति **127**
भूमिका 128
16. लीलावती **137**

वर्ण्य विषय 138
17. मृच्छकटिकम् **141**
कथावस्तु 141
अनुवाद एवं टीकाएँ 148
18. चरक संहिता **149**
रचनाकार 151
निदान स्थान 153
कल्प स्थान 156
भ्रूण शास्त्र 158
भाष्य 161

1

अष्टाध्यायी

पाणिनि (700 ई पू) संस्कृत भाषा के सबसे बड़े वैयाकरण हुए हैं। इनका जन्म तत्कालीन उत्तर पश्चिम भारत के गांधार में हुआ था। इनके व्याकरण का नाम अष्टाध्यायी है जिसमें आठ अध्याय और लगभग चार सहस्र सूत्र हैं। संस्कृत भाषा को व्याकरण सम्मत रूप देने में पाणिनि का योगदान अतुलनीय माना जाता है। अष्टाध्यायी मात्र व्याकरण ग्रंथ नहीं है। इसमें प्रकारांतर से तत्कालीन भारतीय समाज का पूरा चित्र मिलता है। उस समय के भूगोल, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा और राजनीतिक जीवन, दार्शनिक चिंतन, खान-पान, रहन-सहन आदि के प्रसंग स्थान-स्थान पर अंकित हैं।

अष्टाध्यायी

अष्टाध्यायी (अष्टाध्यायी=आठ अध्यायों वाली) महर्षि पाणिनि द्वारा रचित संस्कृत व्याकरण का एक अत्यंत प्राचीन ग्रंथ (700 ई पू) है। इसमें आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं, प्रत्येक पाद में 38 से 220 तक सूत्र हैं। इस प्रकार अष्टाध्यायी में आठ अध्याय, बत्तीस पाद और सब मिलाकर लगभग 4000 सूत्र हैं। अष्टाध्यायी पर महामुनि कात्यायन का विस्तृत वार्तिक ग्रन्थ है और सूत्र तथा वार्तिकों पर भगवान पतंजलि का विशद विवरणात्मक ग्रन्थ महाभाष्य है। संक्षेप में सूत्र, वार्तिक एवं महाभाष्य तीनों सम्मिलित रूप में 'पाणिनीय व्याकरण' कहलाता है और सूत्रकार पाणिनी, वार्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतंजलि-तीनों व्याकरण के 'त्रिमुनि' कहलाते हैं।

अष्टाध्यायी छह वेदांगों में मुख्य माना जाता है। अष्टाध्यायी में 3155 सूत्र और आरंभ में वर्णसमाम्नाय के 14 प्रत्याहार सूत्र हैं। अष्टाध्यायी का परिमाण एक सहस्र अनुष्टुप श्लोक के बराबर है। महाभाष्य में अष्टाध्यायी को "सर्ववेद-परिषद्-शास्त्र" कहा गया है। अर्थात् अष्टाध्यायी का संबंध किसी वेदविशेष तक सीमित न होकर सभी वैदिक संहिताओं से था और सभी के अभिमतों का पाणिनि ने समादर किया था। अष्टाध्यायी में अनेक पूर्वाचार्यों के मतों और सूत्रों का संनिवेश किया गया। उनमें से शाकटायन, शाकल्य, अभिशाली, गार्ग्य, गालव, भारद्वाज, कश्यप, शौनक, स्फोटायन, चाक्रवर्मण का उल्लेख पाणिनि ने किया है।

अष्टाध्यायी का समय

अष्टाध्यायी के कर्ता पाणिनि कब हुए, इस विषय में कई मत हैं। भंडारकर और गोल्डस्टकर इनका समय 7वीं शताब्दी ई.पू. मानते हैं। मैकडानेल, कीथ आदि कितने ही विद्वानों ने इन्हें चौथी शताब्दी ई.पू. माना है। भारतीय अनुश्रुति के अनुसार पाणिनि नंदों के समकालीन थे और यह समय 5वीं शताब्दी ई.पू. होना चाहिए। पाणिनि में शतमान, विंशतिक और कार्षापण आदि जिन मुद्राओं का एक साथ उल्लेख है उनके आधार पर एवं अन्य कई कारणों से हमें पाणिनि का काल यही समीचीन जान पड़ता है।

संरचना

अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। पहले दूसरे अध्यायों में संज्ञा और परिभाषा संबंधी सूत्र हैं एवं वाक्य में आए हुए क्रिया और संज्ञा शब्दों के पारस्परिक संबंध के नियामक प्रकरण भी हैं, जैसे–क्रिया के लिए आत्मनेपद-परस्मैपद-प्रकरण, एवं संज्ञाओं के लिए विभक्ति, समास आदि। तीसरे, चौथे और पाँचवें अध्यायों में सब प्रकार के प्रत्ययों का विधान है। तीसरे अध्याय में धातुओं में प्रत्यय लगाकर कृदंत शब्दों का निर्वचन है और चौथे तथा पाँचवे अध्यायों में संज्ञा शब्दों में प्रत्यय जोड़कर बने नए संज्ञा शब्दों का विस्तृत निर्वचन बताया गया है। ये प्रत्यय जिन अर्थविषयों को प्रकट करते हैं उन्हें व्याकरण की परिभाषा में वृत्ति कहते हैं, जैसे–वर्षा में होनेवाले इंद्रधनु को वार्षिक इंद्रधनु कहेंगे। वर्षा में होनेवाले इस विशेष अर्थ को प्रकट करनेवाला "इक" प्रत्यय तद्धित प्रत्यय है। तद्धित प्रकरण में 1,190 सूत्र हैं और कृदंत प्रकरण में

631। इस प्रकार कृदंत, तद्धित प्रत्ययों के विधान के लिए अष्टाध्यायी के 1,821 अर्थात् आधे से कुछ ही कम सूत्र विनियुक्त हुए हैं। छठे, सातवें और आठवें अध्यायों में उन परिवर्तनों का उल्लेख है, जो शब्द के अक्षरों में होते हैं। ये परिवर्तन या तो मूल शब्द में जुड़ने वाले प्रत्ययों के कारण या संधि के कारण होते हैं। द्वित्व, संप्रसारण, संधि, स्वर, आगम, लोप, दीर्घ आदि के विधायक सूत्र छठे अध्याय में आए हैं। छठे अध्याय के चौथे पाद से सातवें अध्याय के अंत तक अंगाधिकार नामक एक विशिष्ट प्रकरण है, जिसमें उन परिवर्तनों का वर्णन है, जो प्रत्यय के कारण मूल शब्दों में या मूल शब्द के कारण प्रत्यय में होते हैं। ये परिवर्तन भी दीर्घ, ह्रस्व, लोप, आगम, आदेश, गुण, वृद्धि आदि के विधान के रूप में ही देखे जाते हैं। अष्टम अध्याय में, वाक्यगत शब्दों के द्वित्वविधान, प्लुतविधान एवं षत्व और णत्वविधान का विशेषतः उपदेश है।

अष्टाध्यायी के अतिरिक्त उसी से संबंधित गणपाठ और धातुपाठ नामक दो प्रकरण भी निश्चित रूप से पाणिनि निर्मित थे। उनकी परंपरा आज तक अक्षुण्ण चली आती है, यद्यपि गणपाठ में कुछ नए शब्द भी पुरानी सूचियों में कालान्तर में जोड़ दिए गए हैं। वर्तमान उणादि सूत्रों के पाणिनिकृत होने में संदेह है और उन्हें अष्टाध्यायी के गणपाठ के समान अभिन्न अंग नहीं माना जा सकता। वर्तमान उणादि सूत्र शाकटायन-व्याकरण के ज्ञात हाते हैं।

परिचय

पाणिनि ने संस्कृत भाषा के तत्कालीन स्वरूप को परिष्कृत एवं नियमित करने के उद्देश्य से भाषा के विभिन्न अवयवों एवं घटकों यथा ध्वनि-विभाग (अक्षरसमाम्नाय), नाम (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण), पद, क्रिया, वाक्य, लिंग इत्यादि तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों का समावेश अष्टाध्यायी के 32 पादों में, जो आठ अध्यायों में समान रूप से विभक्त हैं, किया है।

व्याकरण के इस महनीय ग्रन्थ में पाणिनि ने विभक्ति-प्रधान संस्कृत भाषा के विशाल कलेवर का समग्र एवं सम्पूर्ण विवेचन लगभग 4000 सूत्रों में किया है, जो आठ अध्यायों में संख्या की दृष्टि से असमान रूप से विभाजित हैं। तत्कालीन समाज में लेखन सामग्री की दुष्प्राप्यता को ध्यान में रखकर पाणिनि ने व्याकरण को स्मृतिगम्य बनाने के लिए सूत्र शैली की सहायता ली है। पुनः, विवेचन को अतिशय संक्षिप्त बनाने हेतु पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों से प्राप्त उपकरणों के साथ-साथ स्वयं भी अनेक उपकरणों का प्रयोग किया है

जिनमें शिवसूत्र या माहेश्वर सूत्र सबसे महत्वपूर्ण हैं। प्रसिद्ध है कि महर्षि पाणिनि ने इन सूत्रों को देवाधिदेव शिव से प्राप्त किया था।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्।
उद्धर्तुकामो सनकादिसिद्धादिनेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

पाणिनि ने संस्कृत भाषा के सभी शब्दों के निर्वचन के लिए करीब 4000 सूत्रों की रचना की जो अष्टाध्यायी के आठ अध्यायों में वैज्ञानिक ढंग से संगृहीत हैं। ये सूत्र वास्तव में गणित के सूत्रों की भांति हैं। जिस तरह से जटिल एवं विस्तृत गणितीय धारणाओं अथवा सिद्धान्तों को सूत्रों (Formula/formulae) द्वारा सरलता से व्यक्त किया जाता है, उसी तरह पाणिनि ने सूत्रों द्वारा अत्यन्त संक्षेप में ही व्याकरण के जटिल नियमों को स्पष्ट कर दिया है। भाषा के समस्त पहलुओं के विवेचन हेतु ही उन्हें 4000 सूत्रों की रचना करनी पड़ी।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में प्रकरणों तथा तद्सम्बन्धित सूत्रों का विभाजन वैज्ञानिक रीति से किया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी को दो भागों में बाँटा है– प्रथम अध्याय से लेकर आठवें अध्याय के प्रथम पाद तक को सपादसप्ताध्यायी एवं शेष तीन पादों को त्रिपादी कहा जाता है। पाणिनि ने पूर्वत्र सिद्धम् (8-2-1) सूत्र बनाकर निर्देश दिया है कि सपादसप्ताध्यायी में विवेचित नियमों (सूत्रों) की तुलना में त्रिपादी में वर्णित नियम असिद्ध हैं। अर्थात्, यदि दोनों भागों में वर्णित नियमों के मध्य यदि कभी विरोध हो जाए तो पूर्व भाग का नियम ही मान्य होगा। इसी तरह, सपादसप्ताध्यायी के अन्तर्गत आने वाले सूत्रों (नियमों) में भी विरोध दृष्टिगोचर होने पर क्रमानुसार परवर्ती (बाद में आने वाले) सूत्र का प्राधान्य रहेगा–विप्रतिषेधे परं कार्यम्। इन सिद्धान्तों को स्थापित करने के बाद, पाणिनि ने सर्वप्रथम संज्ञा पदों को परिभाषित किया है और बाद में उन संज्ञा पदों पर आधारित विषय का विवेचन।

संक्षिप्तता बनाए रखने के लिए पाणिनि ने अनेक उपाय किए हैं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है–विशिष्ट संज्ञाओं (Technical Terms) का निर्माण। व्याकरण के नियमों को बताने में भाषा के जिन शब्दों/अक्षरों समूहों की बारम्बार आवश्यकता पड़ती थी, उन्हें पाणिनि ने एकत्र कर विभिन्न विशिष्ट नाम दे दिया जो संज्ञाओं के रूप में अष्टाध्यायी में आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रसंगों में प्रयुक्त किए गए हैं। नियमों को बताने के पहले ही पाणिनि वैसी संज्ञाओं को परिभाषित कर देते हैं, यथा–माहेश्वर सूत्र–'प्रत्याहार, इत्, टि, नदी, घु, पद, धातु, प्रत्यय, अंग, निष्ठा इत्यादि। इनमें से कुछ को पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों से

उधार लिया है। लेकिन अधिकांश स्वयं उनके द्वारा बनाए गए हैं। इन संज्ञाओं का विवरण आगे दिया गया है।

व्याकरण के कुछ अवयवों यथा धातु, प्रत्यय, उपसर्ग के विवेचन में, पाणिनि को अनेक नियमों (सूत्र) की आवश्यकता पड़ी। ऐसे नियमों के निर्माण के पहले, प्रारंभ में ही पाणिनि उन सम्बन्धित अवयवों का उल्लेख कर बता देते हैं कि आगे एक निश्चित सूत्र तक इन अवयवों का अधिकार रहेगा। इन अवयवों को वे पूर्व में ही संज्ञा रूप में परिभाषित कर चुके हैं। दूसरे शब्दों में पाणिनि प्रकरण विशेष का निर्वचन उस प्रकरण की मूलभूत संज्ञा–यथा धातु, प्रत्यय इत्यादि–के अधिकार (Coverage) में करते हैं, जिससे उन्हें प्रत्येक सूत्र में सम्बन्धित संज्ञा को बार-बार दुहराना नहीं पड़ता है। संक्षिप्तता लाने में यह उपकरण बहुत सहायक है।

अनुवृत्ति–सूत्र-शैली में लिखे गए ग्रन्थों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, 'अनुवृत्ति'। प्रायः एक उपविषय से सम्बन्धित सभी सूत्रों को एकत्र लिखा जाता है। दोहराव न हो, इसके लिए सभी सर्वनिष्ट (कॉमन) शब्दों को सावधानीपूर्वक निकाल लिया जाता था और उनको सही जगह पर सही क्रम में रखा जाता था। अनुवृत्ति के अनुसार, किसी सूत्र में कही गयी बात आगे आने वाले एक या अधिक सूत्रों पर भी लागू हो सकती है। एक उदाहरण देखिए। अष्टाध्यायी का सूत्र (1-1-9) "तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्" है। इसके बाद सूत्र (1-1-10) "नाञ्झलौ (= न अच्-हलौ)" है। जब हम (1-1-10) नाञ्झलौ (न अच्-हलौ) का अर्थ निकालते हैं तो यह ध्यान में रखना होगा कि इसका अकेले मतलब न निकाला जाय बल्कि इसका पूरा मतलब यह है कि "इसके पूर्व सूत्र में कही गयी 'सवर्ण' से सम्बन्धित बात अच्-हलौ (अच् और हल्) पर लागू नहीं (न) होती है।" अर्थात, सूत्र (1-1-10) को केवल "नाञ्झलौ" न पढ़ा जाय बल्कि "अच्-हलौ सवर्णौ न" पढ़ा जाय।

शब्दों/पदों के निर्वचन के लिए, प्रकृति के आधार पर पाणिनि ने छः प्रकार के सूत्रों की रचना की है–

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशो धिकारश्च षड्विधम् सूत्रं मतम्।

(1) संज्ञा सूत्र–नामकरणं संज्ञा-तकनीकी शब्दों का नामकरण।

(2) परिभाषा सूत्र–अनियमे नियमकारिणी परिभाषा।

(3) विधि सूत्र–विषय का विधान।

(4) नियम सूत्र–बहुत्र प्राप्तो संकोचनं हेतु।

(5) अतिदेश सूत्र–जो अपने गुणधर्म को दूसरे सूत्रों पर लागू करते हैं।

(6) अधिकार सूत्र–एकत्र उपात्तस्य अन्यत्र व्यापारः अधिकारः।

पाणिनीय व्याकरण के चार भाग

(क) अष्टाध्यायी–इसमें व्याकरण के लगभग 4000 सूत्र हैं।

(ख) शिवसूत्र या माहेश्वर सूत्र–यह प्रत्याहार बनाने में सहायक होता है। प्रत्याहार के प्रयोग से व्याकरण के नियम संक्षिप्त रूप में पूरी स्पष्टता से कहे गये हैं।

(ग) धातुपाठ–इस भाग में लगभग 2000 धातुओं (क्रिया-मूलों) की सूची दी गयी है। इन धातुओं को विभिन्न वर्गों में रखा गया है।

(घ) गणपाठ–यह 261 गणों में पदों का संग्रह है।

पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन के लिये आवश्यक बातें

प्रत्याहार, इत्संज्ञक, अधिकार, अनुवृत्ति, अपकर्ष, सन्धिविषयक शब्द (एकादेश, पररूप, पूर्वरूप, प्रकृतिभाव आदि), कुछ ज्ञातव्य संज्ञाएँ-(अङ्ग, प्रतिपदिक, पद, भ संज्ञा, विभाषा, उपधा, टी, संयोग, संप्रसारण, गुण, वृद्धि, लोप, आदेश, आगम), शब्द-सिद्धि में सहायक कुछ अन्य उपाय।

पाणिनीय व्याकरण की प्रमुख विशेषताएँ

(1) सम्पूर्णता पाणिनि का व्याकरण संस्कृत भाषा का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण करता है। यह उस समय की बोलचाल की मानक भाषा का तो वर्णन करता ही है, इसके साथ ही वैदिक संस्कृत और संस्कृत के क्षेत्रीय प्रयोगों का भी वर्णन करता है। यहाँ तक कि पाणिनि ने भाषा के सामाजिक-भाषिक (Sociolinguistic) प्रयोग पर भी प्रकाश डाला है।

(2) संक्षिप्तता पाणिनि का व्याकरण सम्पूर्ण होने के साथ ही इतना छोटा है कि लोग इसे याद करते आये हैं।

(3) प्रयोग-सरलता

(4) सामान्य

यद्यपि पाणिनि ने अपना व्याकरण संस्कृत के लिये रचा, किन्तु इसकी युक्तियाँ और उपकरण सभी भाषाओं के व्याकरण के विश्लेषण में प्रयुक्त की जा सकती हैं।

अन्य विशेषताएँ

(क) वाक्य को भाषा की मूल इकाई मानना,

(ख) ध्वनि-उत्पादन-प्रक्रिया का वर्णन एवं ध्वनियों का वर्गीकरण,

(ग) सुबन्त एवं तिंन्त के रूप में सरल और सटीक पद-विभाग,

(घ) व्युत्पत्ति-प्रकृति और प्रत्यय के आधार पर शब्दों का विवेचन।

अष्टाध्यायी में वैदिक संस्कृत और पाणिनि की समकालीन शिष्ट भाषा में प्रयुक्त संस्कृत का सर्वांगपूर्ण विचार किया गया है। वैदिक भाषा का व्याकरण अपेक्षाकृत और भी परिपूर्ण हो सकता था। पाणिनि ने अपनी समकालीन संस्कृत भाषा का बहुत अच्छा सर्वेक्षण किया था। इनके शब्दसंग्रह में तीन प्रकार की विशेष सूचियाँ आई हैं–

(1) जनपद और ग्रामों के नाम,

(2) गोत्रों के नाम,

(3) वैदिक शाखाओं और चरणों के नाम।

इतिहास की दृष्टि से और भी अनेक प्रकार की सांस्कृतिक सामग्री, शब्दों और संस्थाओं का सन्निवेश सूत्रों में हो गया है।

अष्टाध्यायी के बाद

अष्टाध्यायी के साथ आरंभ से ही अर्थों की व्याख्यापूरक कोई वृत्ति भी थी जिसके कारण अष्टाध्यायी का एक नाम, जैसा पतंजलि ने लिखा है, वृत्तिसूत्र भी था। और भी, माथुरीवृत्ति, पुण्यवृत्ति आदि वृत्तियाँ थीं जिनकी परंपरा में वर्तमान काशिकावृत्ति है। अष्टाध्यायी की रचना के लगभग दो शताब्दी के भीतर कात्यायन ने सूत्रों की बहुमुखी समीक्षा करते हुए लगभग चार सहस्र वार्तिकों की रचना की जो सूत्रशैली में ही हैं। वार्तिकसूत्र और कुछ वृत्तिसूत्रों को लेकर पतंजलि ने महाभाष्य का निर्माण किया जो पाणिनीय सूत्रों पर अर्थ, उदाहरण और प्रक्रिया की दृष्टि से सर्वोपरि ग्रंथ है। "अथ शब्दानुशासनम्"- यह माहाभाष्य का प्रथम वाक्य है। पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि-ये तीन व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्य हैं जिन्हें 'मुनित्रय' कहा जाता है। पाणिनि के सूत्रों के आधार पर भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी की रचना की, और उनके शिष्य वरदराज ने सिद्धान्तकौमुदी के आधार पर लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना।

पाणिनीय व्याकरण की महत्ता पर विद्वानों के विचार

- पाणिनीय व्याकरण मानवीय मष्तिष्क की सबसे बड़ी रचनाओं में से एक है। (लेनिनग्राड के प्रोफेसर टी. शेरवात्सकी),
- पाणिनीय व्याकरण की शैली अतिशय-प्रतिभापूर्ण है और इसके नियम अत्यन्त सतर्कता से बनाये गये हैं। (कोल ब्रुक),
- संसार के व्याकरणों में पाणिनीय व्याकरण सर्वशिरोमणि है।.. यह मानवीय मष्तिष्क का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आविष्कार है। (सर डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्डर),
- पाणिनीय व्याकरण उस मानव-मष्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है जिसे किसी दूसरे देश ने आज तक सामने नहीं रखा। (प्रो. मोनियर विलियम्स)।

2

रामायण

जिस प्रकार वेदों और शास्त्रों ने मनुष्य को उसे कल्याण के लिए नाना प्रकार के मंत्र प्रदान किये उसी प्रकार रामायण ने मानव मात्र के लिए एक आदर्श आचार संहिता प्रदान की।

जीवन को विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य को किस प्रकार आचरण करना चाहिए, रामायण इस के लिए आदर्श ग्रंथ है। सर्वप्रथम रामायण की रचना कविवर वाल्मीकि ने की थी। तदुपरांत राम के जीवन को आधार बनाकर अनेक राम-काव्य लिखे गये। हिन्दी में भी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' जैसे–अद्वितीय महा-काव्य की रचना की।

रामायण के चरित नायक भगवान राम है। जो पूर्ण ब्रह्म हैं। दशरथ और कौशल्या के पुत्र के रूप में उन्होंने धरती पर अवतार लिया। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों ने ही उनकी जीवन-गाथा का अत्यंत पवित्र भाव से अंकन किया है।

रामचरित-मानस में जीवन के विविध प्रसंगों के मध्य रामचन्द्र जी का जो रूप उभर कर आया है वह प्रातः स्मरणीय है। सभी पात्रों का चित्रण उच्चस्तरीय है। परिवार, समाज और राष्ट्र सभी स्तरों पर राम का चरित आदर्श की सीमा है।

उन्होंने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए राज वैभव का त्याग कर वन का मार्ग लिया। महाभारत में जहाँ राज्य के लिए दुर्योधन ने रक्त की नदियाँ बहा दीं, राम ने बिना किसी हिचक के पल भर में उसका परित्याग कर दिया।

दूसरी ओर भरत ने उन की पादुकाएँ लेकर सेवक-भाव से तभी तक राज्य का भार धारण किया, जब तक वे वन से लौट नहीं आये। आज जब भाई, भाई का सिर काटने को तैयार है, रामायण के प्रचार और प्रसार की विशेष आवश्यकता है, जिससे लोग सम्पत्ति की निरर्थकता समझ सकें।

सीता ने आदर्श पत्नी, लक्ष्मण ने आदर्श भाई, दशरथ ने आदर्श पिता का जो रूप सामने रखा वह सर्वत्र अनुकरणीय है। राम ने जटायु, शबरी, निषाद, सुग्रीव, हनुमान आदि को जो सम्मान दिया वह उन की उदार हृदयता का प्रमाण है।

वनवास के समय ऋषियों के आश्रम में जाकर उन्हें सम्मान दिया। राक्षसों का विनाश किया और तपोवनों को भयमुक्त किया। रावण के द्वारा सीता हरण कर लिए जाने पर भयंकर युद्ध किया। न केवल सीता को पुनः प्राप्त किया अपितु रावण का सर्वनाश किया और उस के स्थान पर विभीषण का तिलक किया। अपनी शरण में आये विभीषण और सुग्रीव को अभयदान देकर शरणागत धर्म निभाया।

सुग्रीव के प्रति मित्रता का जो आदर्श तुलसीदास ने चित्रित किया है, वही आदर्श है- लोक मर्यादा की रक्षा के लिए निष्कलंक पत्नी का परित्याग कर के प्रजा के सामने आदर्श राजा का रूप प्रस्तुत किया। आज भारतीय जीवन में यदि आदर्श की कुछ मर्यादा बची है, तो उस का कारण रामायण ही है। वैसे तो आज चारों ओर भ्रष्टाचार और पतनोन्मुखी भावनाएँ पनप रही हैं, परन्तु जो लोग रामायण और रामचरितमानस का पाठ करते हैं, वे आज भी इन बुराइयों से बचे हुए हैं।

आज भी तनिक सी आपत्ति आते ही हम 'रामायण का अखंड पाठ' अथवा 'सुन्दर कांड' का पाठ करते हैं। 'रामायण' सीरियल ने एक बार पुन रामादर्श को पुनः प्रस्तुत करने का स्तुत्य कार्य किया।

हमें चाहिए जब भी हमारे सामने किसी प्रकार का संकट हो, हम रामायण से मार्गदर्शन और प्रेरणा लें। हम अवश्य ही सब प्रकार की आपत्तियों पर विजय प्राप्त कर सुख को प्राप्त करेंगे। रामायण हिन्दू रघुवंश के राजा राम की गाथा है।। यह आदि कवि वाल्मीकि द्वारा लिखा गया संस्कृत का एक अनुपम महाकाव्य, स्मृति का वह अंग है। इसे आदिकाव्य तथा इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि को 'आदिकवि' भी कहा जाता है। रामायण के छः अध्याय हैं, जो काण्ड के नाम से जाने जाते हैं, इसके 24,000 श्लोक, हैं।

रचना काल

महाकाव्य की ऐतिहासिक वृद्धि और संरचनागत परतों को जानने के लिए कई प्रयास किए गए हैं, 7 वीं से 4 वीं शताब्दी ईसा पूर्व में पाठ श्रेणी के शुरुआती चरण के लिए विभिन्न हालिया विद्वानों के अनुमान बाद के चरणों के साथ तीसरी शताब्दी सीई तक फैले हुए हैं। कुछ भारतीय कहते हैं कि यह 600 ईपू से पहले लिखा गया। उसके पीछे युक्ति यह है कि महाभारत जो इसके पश्चात आया बौद्ध धर्म के बारे में मौन है यद्यपि उसमें जैन, शैव, पाशुपत आदि अन्य परम्पराओं का वर्णन है। अत: रामायण गौतम बुद्ध के काल के पूर्व का होना चाहिये। भाषा-शैली से भी यह पाणिनि के समय से पहले का होना चाहिये।

"रामायण का पहला और अन्तिम कांड संभवत: बाद में जोड़ा गया था। अध्याय दो से सात तक ज्यादातर इस बात पर बल दिया जाता है कि राम विष्णु, के अवतार थे। कुछ लोगों के अनुसार इस महाकाव्य में यूनानी और कई अन्य सन्दर्भों से पता चलता है कि यह पुस्तक दूसरी सदी ईसा पूर्व से पहले की नहीं हो सकती पर यह धारणा विवादास्पद है। 600 ईपू से पहले का समय इसलिये भी ठीक है कि बौद्ध जातक रामायण के पात्रों का वर्णन करते हैं जबकि रामायण में जातक के चरित्रों का वर्णन नहीं है।

हिन्दू कालगणना के अनुसार रचनाकाल

रामायण का समय त्रेतायुग का माना जाता है। हिन्दू कालगणना चतुर्युगी व्यवस्था पर आधारित है जिसके अनुसार समय अवधि को चार युगों में बाँटा गया है- सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग एव कलियुग जिनकी प्रत्येक चतुर्युग (43,20,000 वर्ष) के बाद पुनरावृत्ति होती है। एक कलियुग 4,32,000 वर्ष का, द्वापर 8,64,000 वर्ष का, त्रेता युग 12,96,000 वर्ष का तथा सतयुग 17,28,000 वर्ष का होता है। इस गणना के अनुसार रामायण का समय न्यूनतम 8,70,000 वर्ष (वर्तमान कलियुग के 5,118 वर्ष. बीते द्वापर युग के 8,64,000 वर्ष) सिद्ध होता है।

रामायण मीमांसा के रचनाकार धर्मसम्राट स्वामी करपात्री, गोवर्धन पुरी शंकराचार्य पीठ, पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र, श्रीरामचंद्र चरितम् के रचनाकार श्रीभागवतानंद गुरु आदि के अनुसार श्रीराम अवतार श्वेतवाराह कल्प के सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के चौबीसवें त्रेता युग में हुआ था जिसके अनुसार श्रीरामचंद्र जी का काल लगभग पौने दो करोड़ वर्ष पूर्व का है। इसके सन्दर्भ में विचार पीयूष, भुशुण्डि रामायण,

पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, वायु पुराण, संजीवनी रामायण एवं पुराणों से प्रमाण दिया जाता है।

राम कथा

सबसे प्रामाणिक रामायण

ब्रह्मा जी के कहे अनुसार वाल्मीकि ने भगवान श्री रामके वृतान्त को श्लोकद्ध किया। महर्षि वाल्मीकि के द्वारा श्लोक) भगवान श्री राम की कथा को वाल्मीकि रामायण के नाम से जाना जाता है। वाल्मीकि को आदिकवि कहा जाता है तथा वाल्मीकि रामायण को आदि रामायण के नाम से भी जाना जाता है और यही सबसे प्रामाणिक भी है।

अन्य रामायण

सनातन धर्म के धार्मिक लेखक तुलसीदास जी के अनुसार सर्वप्रथम श्री राम की कथा भगवान श्री शंकर ने माता पार्वती जी को सुनायी थी। जहाँ पर भगवान शंकर पार्वती जी को भगवान श्री राम की कथा सुना रहे थे वहाँ कागा (कौवा) का एक घोंसला था और उसके भीतर बैठा कागा भी उस कथा को सुन रहा था। कथा पूरी होने के पहले ही माता पार्वती को नींद आ गई पर उस पक्षी ने पूरी कथा सुन ली। उसी पक्षी का पुनर्जन्म काकभुशुण्डि, के रूप में हुआ। काकभुशुण्डि जी ने यह कथा गरुड़ जी को सुनाई। भगवान श्री शंकर के मुख से निकली श्रीराम की यह पवित्र कथा अध्यात्म रामायण के नाम से प्रख्यात है। अध्यात्म रामायण को ही विश्व का सर्वप्रथम रामायण माना जाता है।

देश में विदेशियों की सत्ता हो जाने के बाद संस्कृत का ह्रास हो गया और भारतीय लोग उचित ज्ञान के अभाव तथा विदेशी सत्ता के प्रभाव के कारण अपनी ही संस्कृति को भूलने लग गये। ऐसी स्थिति को अत्यन्त विकट जानकर जनजागरण के लिये महाज्ञानी सन्त श्री तुलसीदास जी ने एक बार फिर से भगवान श्रीराम की पवित्र कथा को देशी (अवधी) भाषा में लिपिबद्ध किया। सन्त तुलसीदास जी ने अपने द्वारा लिखित भगवान श्रीराम की कल्याणकारी कथा से परिपूर्ण इस ग्रंथ का नाम रामचरितमानस, रखा। सामान्य रूप से रामचरितमानस को तुलसी रामायण के नाम से जाना जाता है।

कालान्तर में भगवान श्रीराम की कथा को अनेक विद्वानों ने अपने अपने बुद्धि, ज्ञान तथा मतानुसार अनेक बार लिखा है। इस तरह से अनेकों रामायणों की रचनाएँ हुई हैं।

संक्षेप में रामायण-कथा

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार भगवान राम, विष्णु के मानव अवतार थे। इस अवतार का उद्देश्य मृत्युलोक में मानवजाति को आदर्श जीवन के लिये मार्गदर्शन देना था। अन्ततः श्रीराम ने राक्षस जाति, के राजा रावण का वध किया और धर्म की पुनर्स्थापना की।

बालकाण्ड

अयोध्या नगरी में दशरथ नाम के राजा हुये जिनकी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्र नामक पत्नियाँ थीं। सन्तान प्राप्ति हेतु अयोध्यापति दशरथ ने अपने गुरु श्री वशिष्ठ की आज्ञा से पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया जिसे कि ऋंगी ऋषि ने सम्पन्न किया।

देवदूत द्वारा दशरथ को खीर देना, चित्रकार हुसैन नक्काश और बासवान, अकबर की जयपुर रामायण से

भक्तिपूर्ण आहुतियाँ पाकर अग्निदेव प्रसन्न हुये और उन्होंने स्वयं प्रकट होकर राजा दशरथ को हविष्यपात्र (खीर, पायस) दिया जिसे कि उन्होंने अपनी तीनों पत्नियों में बाँट दिया। खीर के सेवन के परिणामस्वरूप कौशल्या के गर्भ से राम का, कैकेयी के गर्भ से भरत का तथा सुमित्र के गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ।

सीता स्वंयवर

राजकुमारों के बड़े होने पर आश्रम की राक्षसों से रक्षा हेतु ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ से राम और लक्ष्मण को मांग कर अपने साथ ले गये। राम ने ताड़का और सुबाहु जैसे–राक्षसों को मार डाला और मारीच को बिना फल वाले बाण से मार कर समुद्र के पार भेज दिया। उधर लक्ष्मण ने राक्षसों की सारी सेना का संहार कर डाला। धनुषयज्ञ हेतु राजा जनक के निमन्त्रण मिलने पर विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ उनकी नगरी मिथिला (जनकपुर) आ गये। रास्ते में राम ने गौतम मुनि की स्त्री अहल्या का उद्धार किया। मिथिला में आकर जब राम शिवधनुष

को देखकर उठाने का प्रयत्न करने लगे तब वह बीच से टूट गया और जनकप्रतिज्ञा के अनुसार राम ने सीता से विवाह किया। राम और सीता के विवाह के साथ ही साथ गुरु वशिष्ठ ने भरत का माण्डवी से, लक्ष्मण का उर्मिला से और शत्रुन का श्रुतकीर्ति से करवा दिया।

अयोध्याकाण्ड

राम के विवाह के कुछ समय पश्चात् राजा दशरथ ने राम का राज्याभिषेक करना चाहा। तब मंथरा,जो कैकेयी की दासी थी, ने कैकेयी की बुद्धि को फेर दिया। मन्थरा की सलाह से कैकेयी कोपभवन में चली गई। दशरथ जब मनाने आये तो कैकेयी ने उनसे वरदान मांगे कि भरत को राजा बनाया जाये और राम को चौदह वर्षों के लिये वनवास में भेज दिया जाये।

राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी वन चले गये। ऋंगवेरपुर में निषादराज गुह ने तीनों की बहुत सेवा की। कुछ आनाकानी करने के बाद केवट ने तीनों को गंगा नदी के पार उतारा। प्रयाग पहुँच कर राम ने भारद्वाज मुनि से भेंट की। वहां से राम यमुना स्नान करते हुये वाल्मीकि ऋषि के आश्रम पहुँचे। वाल्मीकि से हुई मन्त्रणा के अनुसार राम, सीता और लक्ष्मण चित्रकूट में निवास करने लगे।

दशरथ की मृत्यु

अयोध्या में पुत्र के वियोग के कारण दशरथ का स्वर्गवास हो गया। वशिष्ठ ने भरत और शत्रुघ्न को उनके ननिहाल से बुलवा लिया। वापस आने पर भरत ने अपनी माता कैकेयी की, उसकी कुटिलता के लिये, बहुत भर्त्सना की और गुरुजनों के आज्ञानुसार दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया कर दी। भरत ने अयोध्या के राज्य को अस्वीकार कर दिया और राम को मना कर वापस लाने के लिये समस्त स्नेहीजनों के साथ चित्रकूट चले गये। कैकेयी को भी अपने किये पर अत्यन्त पश्चाताप हुआ। भरत तथा अन्य सभी लोगों ने राम के वापस अयोध्या जाकर राज्य करने का प्रस्ताव रखा जिसे कि राम ने, पिता की आज्ञा पालन करने और रघुवंश की रीति निभाने के लिये, अमान्य कर दिया।

भरत अपने स्नेही जनों के साथ राम की पादुका को साथ लेकर वापस अयोध्या आ गये। उन्होंने राम की पादुका को राज सिंहासन पर विराजित कर दिया स्वयं नन्दिग्राम में निवास करने लगे।

अरण्यकाण्ड

कुछ काल के पश्चात राम ने चित्रकूट से प्रयाण किया तथा वे अत्रि ऋषि के आश्रम पहुँचे। अत्रि ने राम की स्तुति की और उनकी पत्नी अनसूया ने सीता को पातिव्रत धर्म के मर्म समझाये। वहाँ से फिर राम ने आगे प्रस्थान किया और शरभंग मुनि से भेंट की। शरभंग मुनि केवल राम के दर्शन की कामना से वहाँ निवास कर रहे थे अत: राम के दर्शनों की अपनी अभिलाषा पूर्ण हो जाने से योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और ब्रह्मलोक को गमन किया। और आगे बढ़ने पर राम को स्थान-स्थान पर हड्डियों के ढेर दिखाई पड़े जिनके विषय में मुनियों ने राम को बताया कि राक्षसों ने अनेक मुनियों को खा डाला है और उन्हीं मुनियों की हड्डियाँ हैं। इस पर राम ने प्रतिज्ञा की कि वे समस्त राक्षसों का वध करके पृथ्वी को राक्षस विहीन कर देंगे। राम और आगे बढ़े और पथ में सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि ऋषियों से भेंट करते हुये दण्डक वन में प्रवेश किया जहाँ पर उनकी मुलाकात जटायु से हुई। राम ने पंचवटी को अपना निवास स्थान बनाया।

सीता हरण

पंचवटी में रावण की बहन शूर्पणखा ने आकर राम से प्रणय निवेदन-किया। राम ने यह कह कर कि वे अपनी पत्नी के साथ हैं और उनका छोटा भाई अकेला है उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया। लक्ष्मण ने उसके प्रणय-निवेदन को अस्वीकार करते हुये शत्रु की बहन जान कर उसके नाक और कान काट लिये। शूर्पणखा ने खर-दूषण से सहायता की मांग की और वह अपनी सेना के साथ लड़ने के लिये आ गया। लड़ाई में राम ने खर-दूषण और उसकी सेना का संहार कर डाला। शूर्पणखा ने जाकर अपने भाई रावण से शिकायत की। रावण ने बदला लेने के लिये मारीच को स्वर्णमृग बना कर भेजा जिसकी छाल की मांग सीता ने राम से की। लक्ष्मण को सीता के रक्षा की आज्ञा दे कर राम स्वर्णमृग रूपी मारीच को मारने के लिये उसके पीछे चले गये। राम के हाथों मारा गया पर मरते-मरते मारीच ने राम की आवाज बना कर 'हा लक्ष्मण' का क्रन्दन किया जिसे सुन कर सीता ने आशंकावश होकर लक्ष्मण को राम के पास भेज दिया। लक्ष्मण के जाने के बाद अकेली सीता का रावण ने छलपूर्वक हरण कर लिया और अपने साथ लंका ले गया। रास्ते में जटायु ने सीता को बचाने के लिये रावण से युद्ध किया और रावण ने तलवार के प्रहार से उसे अधमरा कर दिया।

सीता को न पा कर राम अत्यन्त दु:खी हुये और विलाप करने लगे। रास्ते में जटायु से भेंट होने पर उसने राम को रावण के द्वारा अपनी दुर्दशा होने व सीता को हर कर दक्षिण दिशा की ओर ले जाने की बात बताई। ये सब बताने के बाद जटायु ने अपने प्राण त्याग दिये और राम उसका अन्तिम संस्कार करके सीता की खोज में सघन वन के भीतर आगे बढ़े। रास्ते में राम ने दुर्वासा के शाप के कारण राक्षस बने गन्धर्व कबन्ध का वध करके उसका उद्धार किया और शबरी के आश्रम जा पहुँचे जहाँ पर कि उसके द्वारा दिये गये जूठे बेरों को उसके भक्ति के वश में होकर खाया। इस प्रकार राम सीता की खोज में सघन वन के अंदर आगे बढ़ते गये।

किष्किन्धाकाण्ड

राम ऋष्यमूक पर्वत के निकट आ गये। उस पर्वत पर अपने मन्त्रियों सहित सुग्रीव रहता था। सुग्रीव ने, इस आशंका में कि कहीं बालि ने उसे मारने के लिये उन दोनों वीरों को न भेजा हो, हनुमान को राम और लक्ष्मण के विषय में जानकारी लेने के लिये ब्राह्मण के रूप में भेजा। यह जानने के बाद कि उन्हें बालि ने नहीं भेजा है हनुमान ने राम और सुग्रीव में मित्रता करवा दी। सुग्रीव ने राम को सान्त्वना दी कि जानकी जी मिल जायेंगी और उन्हें खोजने में वह सहायता देगा साथ ही अपने भाई बालि के अपने ऊपर किये गये अत्याचार के विषय में बताया। राम ने बालि का वध कर के सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य तथा बालि के पुत्र अंगद को युवराज का पद दे दिया।

राज्य प्राप्ति के बाद सुग्रीव विलास में लिप्त हो गया और वर्षा तथा शरद् ऋतु व्यतीत हो गई। राम की नाराजगी पर सुग्रीव ने वानरों को सीता की खोज के लिये भेजा। सीता की खोज में गये वानरों को एक गुफा में एक तपस्विनी के दर्शन हुये। तपस्विनी ने खोज दल को योगशक्ति से समुद्रतट पर पहुँचा दिया जहां पर उनकी भेंट सम्पाती से हुई। सम्पाती ने वानरों को बताया कि रावण ने सीता को लंका अशोकवाटिका में रखा है। जाम्बवन्त ने हनुमान को समुद्र लांघने के लिये उत्साहित किया।

सुंदरकाण्ड

हनुमान ने लंका की ओर प्रस्थान किया। सुरसा ने हनुमान की परीक्षा ली और उसे योग्य तथा सामर्थ्यवान पाकर आशीर्वाद दिया। मार्ग में हनुमान ने छाया

पकड़ने वाली राक्षसी का वध किया और लंकिनी पर प्रहार करके लंका में प्रवेश किया। उनकी विभीषण से भेंट हुई। जब हनुमान अशोकवाटिका में पहुँचे तो रावण सीता को धमका रहा था। रावण के जाने पर त्रिजटा ने सीता को सान्त्वना दी। एकान्त होने पर हनुमान जी ने सीता माता से भेंट करके उन्हें राम की मुद्रिका दी। हनुमान ने अशोकवाटिका का विध्वंस करके रावण के पुत्र अक्षय कुमार का वध कर दिया। मेघनाथ हनुमान को नागपाश में बांध कर रावण की सभा में ले गया। रावण के प्रश्न के उत्तर में हनुमान ने अपना परिचय राम के दूत के रूप में दिया। रावण ने हनुमान की पूँछ में तेल में डूबा हुआ कपड़ा बांध कर आग लगा दिया इस पर हनुमान ने लंका का दहन कर दिया।

हनुमान सीता के पास पहुँचे। सीता ने अपनी चूड़ामणि दे कर उन्हें विदा किया। वे वापस समुद्र पार आकर सभी वानरों से मिले और सभी वापस सुग्रीव के पास चले गये। हनुमान के कार्य से राम अत्यन्त प्रसन्न हुये। राम वानरों की सेना के साथ समुद्रतट पर पहुँचे। उधर विभीषण ने रावण को समझाया कि राम से बैर न लें इस पर रावण ने विभीषण को अपमानित कर लंका से निकाल दिया। विभीषण राम के शरण में आ गया और राम ने उसे लंका का राजा घोषित कर दिया। राम ने समुद्र से रास्ता देने की विनती की। विनती न मानने पर राम ने क्रोध किया और उनके क्रोध से भयभीत होकर समुद्र ने स्वयं आकर राम की विनती करने के पश्चात् नल और नील के द्वारा पुल बनाने का उपाय बताया।

लंकाकाण्ड (युद्धकाण्ड)

जाम्बवन्त के आदेश से नल-नील दोनों भाइयों ने वानर सेना की सहायता से समुद्र पर पुल बांध दिया। श्री राम ने श्री रामेश्वर की स्थापना करके भगवान शंकर की पूजा की और सेना सहित समुद्र के पार उतर गये। समुद्र के पार जाकर राम ने डेरा डाला। पुल बंध जाने और राम के समुद्र के पार उतर जाने के समाचार से रावण मन में अत्यन्त व्याकुल हुआ। मन्दोदरी के राम से बैर न लेने के लिये समझाने पर भी रावण का अहंकार नहीं गया। इधर राम अपनी वानरसेना के साथ सुबेल पर्वत पर निवास करने लगे। अंगद राम के दूत बन कर लंका में रावण के पास गये और उसे राम के शरण में आने का संदेश दिया किन्तु रावण ने नहीं माना।

शान्ति के सारे प्रयास असफल हो जाने पर युद्ध आरम्भ हो गया। लक्ष्मण और मेघनाद के मध्य घोर युद्ध हुआ। शक्तिबाण के वार से लक्ष्मण मूर्छित हो

गये। उनके उपचार के लिये हनुमान सुषेण वैद्य को ले आये और संजीवनी लाने के लिये चले गये। गुप्तचर से समाचार मिलने पर रावण ने हनुमान के कार्य में बाधा के लिये कालनेमि को भेजा जिसका हनुमान ने वध कर दिया। औषधि की पहचान न होने के कारण हनुमान पूरे पर्वत को ही उठा कर वापस चले। मार्ग में हनुमान को राक्षस होने के सन्देह में भरत ने बाण मार कर मूर्छित कर दिया परन्तु यथार्थ जानने पर अपने बाण पर बैठा कर वापस लंका भेज दिया। इधर औषधि आने में विलम्ब देख कर राम प्रलाप करने लगे। सही समय पर हनुमान औषधि लेकर आ गये और सुषेण के उपचार से लक्ष्मण स्वस्थ हो गये।

रावण ने युद्ध के लिये कुम्भकर्ण को जगाया। कुम्भकर्ण ने भी रावण को राम की शरण में जाने की असफल मन्त्रणा दी। युद्ध में कुम्भकर्ण ने राम के हाथों परमगति प्राप्त की। लक्ष्मण ने मेघनाद से युद्ध करके उसका वध कर दिया। राम और रावण के मध्य अनेकों घोर युद्ध हुऐ और अन्त में रावण राम के हाथों मारा गया। विभीषण को लंका का राज्य सौंप कर राम, सीता और लक्ष्मण के साथ पुष्पकविमान पर चढ़ कर अयोध्या के लिये प्रस्थान किया।

उत्तरकाण्ड

उत्तरकाण्ड राम कथा का उपसंहार है। सीता, लक्ष्मण और समस्त वानरसेना के साथ राम अयोध्या वापस पहुँचे। राम का भव्य स्वागत हुआ, भरत के साथ सर्वजनों में आनन्द व्याप्त हो गया। वेदों और शिव की स्तुति के साथ राम का राज्याभिषेक हुआ। अभ्यागतों की विदाई दी गई। राम ने प्रजा को उपदेश दिया और प्रजा ने कृतज्ञता प्रकट की। चारों भाइयों के दो दो पुत्र हुये। रामराज्य एक आदर्श बन गया।

उपरोक्त बातों के साथ ही साथ गोस्वामी तुलसीदास जी ने उत्तरकाण्ड में श्री राम-वशिष्ठ संवाद, नारद जी का अयोध्या आकर रामचन्द्र जी की स्तुति करना, शिव-पार्वती संवाद, गरुड़ मोह तथा गरुड़ जी का काकभुशुण्डि जी से रामकथा एवं राम-महिमा सुनना, काकभुशुण्डि जी के पूर्वजन्म की कथा, ज्ञान-भक्ति निरूपण, ज्ञानदीपक और भक्ति की महान महिमा, गरुड़ के सात प्रश्न और काकभुशुण्डि जी के उत्तर आदि विषयों का भी विस्तृत वर्णन किया है।

जहाँ तुलसीदास जी ने उपरोक्त वर्णन लिखकर रामचरितमानस को समाप्त कर दिया है वहीं आदिकवि वाल्मीकि अपने रामायण में उत्तरकाण्ड में रावण तथा

हनुमान के जन्म की कथा, सीता का निर्वासन, राजा नृग, राजा निमि, राजा ययाति तथा रामराज्य में कुत्ते का न्याय की उपकथायें, लवकुश का जन्म, राम के द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान तथा उस यज्ञ में उनके पुत्रों लव तथा कुश के द्वारा महाकवि वाल्मीकि रचित रामायण गायन, सीता का रसातल प्रवेश, लक्ष्मण का परित्याग, 515 का भी वर्णन किया है। वाल्मीकि रामायण में उत्तरकाण्ड का समापन राम के महाप्रयाण के बाद ही हुआ है।

रामायण की सीख

रामायण के सारे चरित्र अपने धर्म का पालन करते हैं। राम एक आदर्श पुत्र हैं। पिता की आज्ञा उनके लिये सर्वोपरि है। पति के रूप में राम ने सदैव एकपत्नीव्रत का पालन किया। राजा के रूप में प्रजा के हित के लिये स्वयं के हित को हेय समझते हैं। विलक्षण व्यक्तित्त्व है उनका। वे अत्यन्त वीर्यवान, तेजस्वी, विद्वान, धैर्यशील, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान, सुंदर, पराक्रमी, दुष्टों का दमन करने वाले, युद्ध एवं नीतिकुशल, धर्मात्मा, मर्यादापुरुषोत्तम, प्रजावत्सल, शरणागत को शरण देने वाले, सर्वशास्त्रों के ज्ञाता एवं प्रतिभा सम्पन्न हैं।

सीता का पातिव्रत महान है। सारे वैभव और ऐश्वर्य को ठुकरा कर वे पति के साथ वन चली गईं। रामायण भातृ-प्रेम का भी उत्कृष्ट उदाहरण है। जहाँ बड़े भाई के प्रेम के कारण लक्ष्मण उनके साथ वन चले जाते हैं वहीं भरत अयोध्या की राज गद्दी पर, बड़े भाई का अधिकार होने के कारण, स्वयं न बैठ कर राम की पादुका को प्रतिष्ठित कर देते हैं। कौशल्या एक आदर्श माता हैं। अपने पुत्र राम पर कैकेयी के द्वारा किये गये अन्याय को भूला कर वे कैकेयी के पुत्र भरत पर उतनी ही ममता रखती हैं जितनी कि अपने पुत्र राम पर।

हनुमान एक आदर्श भक्त हैं, वे राम की सेवा के लिये अनुचर के समान सदैव तत्पर रहते हैं। शक्तिबाण से मूर्छित लक्ष्मण को उनकी सेवा के कारण ही प्राणदान प्राप्त होता है। रावण के चरित्र से सीख मिलती है कि अहंकार नाश का कारण होता है। रामायण के चरित्रों से सीख लेकर मनुष्य अपने जीवन को सार्थक बना सकता है।

रामायण द्वारा प्रेरित अन्य साहित्यिक महाकाव्य

वाल्मीकि रामायण से प्रेरित होकर सन्त तुलसीदास ने रामचरितमानस जैसे–महाकाव्य की रचना की जो कि वाल्मीकि के द्वारा संस्कृत में लिखे गये

रामायण का हिंदी संस्करण है। रामचरितमानस में हिंदू आदर्शों का उत्कृष्ट वर्णन है इसीलिये इसे हिंदू धर्म के प्रमुख ग्रंथ होने का श्रेय मिला हुआ है और प्रत्येक हिंदू परिवार में भक्तिभाव के साथ इसका पठन पाठन किया जाता है।

रामायण से ही प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त ने पंचवटी तथा साकेत नामक खंडकाव्यों की रचना की। रामायण में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के उल्लेखनीय त्याग को शायद भूलवश अनदेखा कर दिया गया है और इस भूल को साकेत खंडकाव्य रचकर मैथिलीशरण गुप्त जी ने सुधारा है।

राम सम्बन्धी कथानक से प्रेरित होकर श्रीभागवतानंद गुरु ने संस्कृत महाकाव्य श्रीराघवेंद्रचरितम् की रचना की जो अद्‌भुत एवं गुप्त कथा प्रसंग से भरा हुआ है। इस ग्रंथ में 20 से अधिक प्रकार के रामायणों की कथा का समावेश है।

नेपाल के राजदरबार से सम्मानित कविवर श्री राधेश्याम जी की राधेश्याम रामायण, प्रेमभूषण जी की प्रेम रामायण, महर्षि कम्बन की कम्ब रामायण के अलावा और भी अनेक साहित्यकारों ने रामायण से प्रेरणा ले कर अनेक कृतियों की रचना की है।

3

महाभारत

महाभारत 1,00,000 छंदों से मिलकर सबसे बड़ा महाकाव्य है और इसे (पुस्तकों) में विभाजित किया गया है। यह पुस्तक आमतौर पर ऋषि वेद व्यास को सौंपी जाती है, लेकिन विद्वानों ने संदेह व्यक्त किया है कि क्या ऐसा महान कार्य किसी एक व्यक्ति द्वारा पूरा किया जा सकता था। हॉपकिंस का मानना है कि यह एक व्यक्ति द्वारा और न ही एक पीढ़ी द्वारा, लेकिन कई लोगों द्वारा तैयार किया गया था।

महाभारत एक बुनियादी अर्थ में रामायण से अलग है, जहां तक बाद में आर्यों और गैर-आर्यों के संघर्ष को दर्शाया गया है, पूर्व में पांडवों और कौरवों, दोनों आर्य लोगों के बीच संघर्ष की कहानी है।

महाभारत की लड़ाई, जो कुरुक्षेत्र में लड़ी गई थी, में लगभग पूरे भारत के आर्य राजा शामिल थे।

जबकि मथुरा के काशी, कोसल, मगध, मत्स्य, चेदि और यदु पांडवों, यवन, सोक, मद्रास, कम्बोज, कैकेयस, सिन्धु, सांवरी, भोज, आन्ध्र, महिष्मती, अवन्ति और प्रान्त के साथ संबद्ध थे। कौरवों के सहयोगी। अंततः पांडवों ने कृष्ण की मदद से विजय प्राप्त की।

महाभारत की कहानी के अनुसार, चंद्र वंश के राजा शांतनु ने हस्तिनापुर पर शासन किया, जो गंगा और जमुना नदी के बीच स्थित एक क्षेत्र था। उनके दो पुत्र भीष्म और यिचित्रविर्य थे। जैसे–ही भीष्म अविवाहित रहे, विचित्रवीर्य राजा बन गए। विचित्रवीर्य के दो पुत्र थे-

पांडुस और धृतराष्ट्र

चूंकि धृतराष्ट्र जन्म से अंधे थे, इसलिए पांडु राजा बन गए। पांडु के पांच पुत्र थे जिन्हें पांडव के नाम से जाना जाता था। दूसरी ओर धृतराष्ट्र के 100 पुत्र थे और वे कौरवों के नाम से जाने जाते थे। पांडु धृतराष्ट्र की मृत्यु के बाद राजा बने।

वह एक सौम्य शासक था और अपने भतीजों की अच्छी देखभाल करता था, और उन्हें अच्छी शिक्षा प्रदान करता था। लेकिन धृतराष्ट्र के पुत्र, विशेष रूप से उनके बड़े पुत्र दर्योधन को उनसे ईर्ष्या थी। उन्होंने साजिश रची और पांडवों को निर्वासित करने में कामयाब रहे, जो दिल्ली के पास बस गए और एक नई राजधानी इंद्रप्रस्थ की स्थापना की।

इस बीच, अर्जुन, पांडवों में से एक, स्वयंबर के परिणामस्वरूप पांचाल-देश की राजकुमारी द्रौपदी को जीता। दुर्योधन, जो अभी भी पांडवों से ईर्ष्या कर रहा था, ने उन्हें अपने राज्य में पासा के खेल के लिए आमंत्रित किया।

खेल के दौरान, सबसे बड़े पांडव, खेल में पांच पांडवों की पत्नी द्रौपदी सहित सब कुछ खो बैठे। परिणामस्वरूप एक बार फिर पांडवों को 13 साल के लिए वनवास पर भेज दिया गया। अपने निर्वासन का कार्यकाल पूरा करने के बाद पांडवों ने अपने राज्य का दावा किया।

हालाँकि, दुर्योधन ने उसे वापस करने से इनकार कर दिया और अंततः महाभारत की लड़ाई हुई, जो अठारह दिनों तक चली। ऐसा कहा जाता है कि सबसे पहले अर्जुन, पांडवों में से एक, अपने ही परिजनों और परिजनों से लड़ने में झिझकता था।

इस समय, कृष्ण ने, उनके सहयोगी, ने उन्हें दिव्य संदेश दिया जो भगवद्गीता में निहित है। परिणामस्वरूप अर्जुन ने हथियार उठाए और बहादुरी से लड़े। इस लड़ाई में पुरुषों का अभूतपूर्व कत्लेआम हुआ और सभी कौरव मारे गए।

तब युधिष्ठिर राजा बने। कुछ समय बाद पाँचों पांडवों ने हिमालय की ओर प्रस्थान किया और अर्जुन के पौत्र राजा परीक्षित को राज्य सौंप दिया। यह ध्यान दिया जा सकता है कि उपर्युक्त मुख्य कहानी के अलावा, महाभारत में कई अन्य पौराणिक और पौराणिक कहानियां भी शामिल हैं। महाभारत हिन्दुओं का एक प्रमुख काव्य ग्रंथ है, जो स्मृति के इतिहास वर्ग में आता है। कभी-कभी इसे केवल भारत कहा जाता है। यह काव्यग्रंथ भारत का अनुपम धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक ग्रंथ हैं। विश्व का सबसे लंबा यह साहित्यिक ग्रंथ और

महाकाव्य, हिन्दू धर्म के मुख्यतम ग्रंथों में से एक है। इस ग्रन्थ को हिन्दू धर्म में पंचम वेद माना जाता है। यद्यपि इसे साहित्य की सबसे अनुपम कृतियों में से एक माना जाता है, किन्तु आज भी यह ग्रंथ प्रत्येक भारतीय के लिये एक अनुकरणीय स्रोत है। यह कृति प्राचीन भारत के इतिहास की एक गाथा है। इसी में हिन्दू धर्म का पवित्रतम ग्रंथ भगवद्गीता सन्निहित है। पूरे महाभारत में लगभग 1,10,000 श्लोक हैं, जो यूनानी काव्यों इलियड और ओडिसी से परिमाण में दस गुणा अधिक हैं।

परंपरागत रूप से, महाभारत की रचना का श्रेय वेदव्यास को दिया जाता है। इसकी ऐतिहासिक वृद्धि और संरचनागत परतों को जानने के लिए कई प्रयास किए गए हैं। महाभारत के थोक को शायद तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व और तीसरी शताब्दी के बीच संकलित किया गया था, जिसमें सबसे पुराने संरक्षित भाग 400 ईसा पूर्व से अधिक पुराने नहीं थे। महाकाव्य से संबंधित मूल घटनाएँ संभवत: 9 वीं और 8 वीं शताब्दी ईसा पूर्व के बीच की हैं। पाठ संभवत: प्रारंभिक गुप्त राजवंश (ब. 4 वीं शताब्दी सीई) द्वारा अपने अंतिम रूप में पहुँच गया। महाभारत के अनुसार, कथा को 24,000 श्लोकों के एक छोटे संस्करण से विस्तारित किया जाता है, जिसे केवल भारत कहा जाता है। हिन्दू मान्यताओं, पौराणिक संदर्भो एवं स्वयं महाभारत के अनुसार इस काव्य का रचनाकार वेदव्यास जी को माना जाता है। इस काव्य के रचयिता वेदव्यास जी ने अपने इस अनुपम काव्य में वेदों, वेदांगों और उपनिषदों के गुह्यतम रहस्यों का निरुपण किया हैं। इसके अतिरिक्त इस काव्य में न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, ज्योतिष, युद्धनीति, योगशास्त्र, अर्थशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, खगोलविद्या तथा धर्मशास्त्र का भी विस्तार से वर्णन किया गया है।

मूल काव्य रचना इतिहास

सूत जी द्वारा महाभारत ऋषि मुनियों को सुनाना। वेदव्यास जी को महाभारत पूरा रचने में 3 वर्ष लग गये थे, इसका कारण यह हो सकता है कि उस समय लेखन लिपि कला का इतना विकास नहीं हुआ था, उस काल में ऋषियों द्वारा वैदिक ग्रन्थों को पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परागत मौखिक रूप से याद करके सुरक्षित रखा जाता था। उस समय संस्कृत ऋषियों की भाषा थी और ब्राह्मी आम बोलचाल की भाषा हुआ करती थी। इस प्रकार ऋषियों द्वारा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य मौखिक रूप से याद कर पीढ़ी दर पीढ़ी सहस्त्रों वर्षो तक याद रखा

गया। फिर धीरे-धीरे जब समय के प्रभाव से वैदिक युग के पतन के साथ ही ऋषियों की वैदिक साहित्यों को याद रखने की शैली लुप्त हो गयी तब से वैदिक साहित्य को पाण्डुलिपियों पर लिखकर सुरक्षित रखने का प्रचलन हो गया। यह सर्वमान्य है कि महाभारत का आधुनिक रूप कई अवस्थाओं से गुजर कर बना है। विद्वानों द्वारा इसकी रचना की चार प्रारम्भिक अवस्थाएं पहचानी गयी हैं। ये अवस्थाएं संभावित रचना काल क्रम में निम्न लिखित हैं–

प्रारम्भिक अवस्थाएं

1200-600 ईसा पूर्व

सूत जी और ऋषि-मुनियों की इस वार्ता के रूप में कही गयी "महाभारत" का लेखन कला के विकसित होने पर सर्वप्रथम् ब्राह्मी या संस्कृत में हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के रूप में लिपिबद्ध किया जाना।

ऐतिहासिक एवं भाषाई प्रमाण

1000 ईसा पूर्व

महाभारत में गुप्त और मौर्य कालीन राजाओं तथा जैन (1000-700 ईसा पूर्व) और बौद्ध धर्म (700-200 ईसा पूर्व) का भी वर्णन नहीं आता। साथ ही शतपथ ब्राह्मण (1100 ईसा पूर्व) एवं छांदोग्य-उपनिषद (1000 ईसा पूर्व) में भी महाभारत के पात्रों का वर्णन मिलता है। अतएव यह निश्चित तौर पर 1000 ईसा पूर्व से पहले रची गयी होगी।

600-400 ईसा पूर्व

पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी (600-400 ईसा पूर्व) में महाभारत और भारत दोनों का उल्लेख है तथा इसके साथ साथ श्रीकृष्ण एवं अर्जुन का भी संदर्भ आता है अतएव यह निश्चित है कि महाभारत और भारत पाणिनि के काल के बहुत पहले से ही अस्तित्त्व में रहे थे।

प्रथम शताब्दी

यूनान के पहली शताब्दी के राजदूत डियो क्रायसोसटम (Dio Chrysostom) यह बताते है की दक्षिण-भारतीयों के पास एक लाख श्लोकों

का एक ग्रंथ है , जिससे यह पता चलता है कि महाभारत पहली शताब्दी में भी एक लाख श्लोकों का था। महाभारत की कहानी को ही बाद के मुख्य यूनानी ग्रंथों इलियड और ओडिसी में बार-बार अन्य रूप से दोहराया गया, जैसे–धृतराष्ट्र का पुत्र मोह, कर्ण-अर्जुन प्रतिस्पर्धा आदि।

संस्कृत की सबसे प्राचीन पहली शताब्दी की एमएस स्पित्जर पाण्डुलिपि में भी महाभारत के 18 पर्वों की विवरणिका दी गयी है, जिससे यह पता चलता है कि इस काल तक महाभारत 18 पर्वों के रूप में प्रसिद्ध थी, यद्यपि 100 पर्वों की विवरणिका बहुत प्राचीन काल में प्रसिद्ध रही होगी, क्योंकि वेदव्यास जी ने महाभारत की रचना सर्वप्रथम 100 पर्वों में की थी, जिसे बाद में सूत जी ने 18 पर्वों के रूप में व्यवस्थित कर ऋषियों को सुनाया था।

5वीं शताब्दी

महाराजा शरवन्थ के 5वीं शताब्दी के तांबे की स्लेट पर पाये गये अभिलेख में महाभारत को एक लाख श्लोकों की संहिता बताया गया है। वह अभिलेख निम्नलिखित है–

उक्तंच महाभारते शतसाहस्त्रयां संहितायां पराशरसुतेन वेदव्यासेन व्यासेन।

पुरातत्त्व प्रमाण (1900 ई.पू से पहले)

सरस्वती नदी

प्राचीन वैदिक सरस्वती नदी का महाभारत में कई बार वर्णन आता है, बलराम जी द्वारा इसके तट के समान्तर प्लक्ष पेड़ (प्लक्षप्रस्त्रवण, यमुनोत्री के पासद्ध से प्रभास क्षेत्र (वर्तमान कच्छ का रण) तक तीर्थयात्रा का वर्णन भी महाभारत में आता है।

कई भू-विज्ञानी मानते हैं कि वर्तमान सूखी हुई घग्गर-हकरा नदी ही प्राचीन वैदिक सरस्वती नदी थी, जो 5000-3000 ईसा पूर्व पूरे प्रवाह से बहती थी और लगभग 1900 ईसा पूर्व में भूगर्भी परिवर्तनों के कारण सूख गयी थी। ऋग्वेद में वर्णित प्राचीन वैदिक काल में सरस्वती नदी को नदीतमा की उपाधि दी गई थी। उनकी सभ्यता में सरस्वती नदी ही सबसे बड़ी और मुख्य नदी थी, गंगा नहीं।

भूगर्भी परिवर्तनों के कारण सरस्वती नदी का पानी यमुना में चला गया, गंगा-यमुना संगम स्थान को 'त्रिवेणी' (गंगा-यमुना-सरस्वती) संगम मानते हैं।

इस घटना को बाद के वैदिक साहित्यों में वर्णित हस्तिनापुर के गंगा द्वारा बहाकर ले जाने से भी जोड़ा जाता है, क्योंकि पुराणों में आता है कि परीक्षित की 28 पीढियों के बाद गंगा में बाढ़ आ जाने के कारण सम्पूर्ण हस्तिनापुर पानी में बह गया और बाद की पीढ़ियों ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया।

महाभारत में सरस्वती नदी के विनाशन नामक तीर्थ पर सूखने का सन्दर्भ आता है जिसके अनुसार मलेच्छों से द्वेष होने के कारण सरस्वती नदी ने मलेच्छ (सिंध के पास के) प्रदेशों में जाना बंद कर दिया।

द्वारका

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग ने गुजरात के पश्चिमी तट पर समुद्र में डूबे 4000-3500 वर्ष पुराने शहर खोज निकाले हैं। इनको महाभारत में वर्णित द्वारका के सन्दर्भों से जोड़ा गया है। प्रो.एस.आर राव ने कई तर्क देकर इस नगरी को द्वारका सिद्ध किया है। यद्यपि अभी मतभेद जारी है, क्योंकि गुजरात के पश्चिमी तट पर कई अन्य 7500 वर्ष पुराने शहर भी मिल चुके हैं।

निष्कर्ष

इन सम्पूर्ण तथ्यों से यह माना जा सकता है कि महाभारत निश्चित तौर पर 950-800 ईसा पूर्व रची गयी होगीं, जो महाभारत में वर्णित ज्योतिषीय तिथियों, भाषाई विश्लेषण, विदेशी सूत्रों एवं पुरातत्त्व प्रमाणों से मेल खाती है। परन्तु आधुनिक संस्करण की रचना 600-200 ईसा पूर्व हुई होगी। अधिकतर अन्य वैदिक साहित्यों के समान ही यह महाकाव्य भी पहले वाचिक परंपरा द्वारा हम तक पीढी दर पीढी पहुँचा और बाद में छपाई की कला के विकसित होने से पहले ही इसके बहुत से अन्य भौगोलिक संस्करण भी हो गये, जिनमें बहुत सी ऐसी घटनायें हैं, जो मूल कथा में नहीं दिखतीं या फिर किसी अन्य रूप में दिखती है।

परिचय

कम्बोडिया के अंकोर वट में वेदव्यास एवं गणेश जी को महाभारत की रचना करते हुए चित्रित करता एक शिलाचित्र।

आरम्भ

महाभारत ग्रंथ का आरम्भ निम्न श्लोक के साथ होता है–

"नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥"

परन्तु महाभारत के आदिपर्व में दिये वर्णन के अनुसार कई विद्वान इस ग्रंथ का आरम्भ "नारायणं नमस्कृत्य" से, तो कोई आस्तिक पर्व से और दूसरे विद्वान ब्राह्मण उपचिर वसु की कथा से इसका आरम्भ मानते हैं।

विभिन्न नाम

यह महाकाव्य 'जय संहिता', 'भारत' और 'महाभारत' इन तीन नामों से प्रसिद्ध है। वास्तव में वेद व्यास जी ने सबसे पहले 1,00,000 श्लोकों के परिमाण के 'भारत' नामक ग्रंथ की रचना की थी, इसमें उन्होंने भारतवंशियों के चरित्रों के साथ-साथ अन्य कई महान ऋषियों, चन्द्रवंशी-सूर्यवंशी राजाओं के उपाख्यानों सहित कई अन्य धार्मिक उपाख्यान भी डाले। इसके बाद व्यास जी ने 24,000 श्लोकों का बिना किसी अन्य ऋषियों, चन्द्रवंशी-सूर्यवंशी राजाओं के उपाख्यानों का केवल भारतवंशियों को केन्द्रित करके 'भारत' काव्य बनाया। इन दोनों रचनाओं में धर्म की अधर्म पर विजय होने के कारण इन्हें 'जय' भी कहा जाने लगा। महाभारत में एक कथा आती है कि जब देवताओं ने तराजू के एक पासे में चारों "वेदों" को रखा और दूसरे पर 'भारत ग्रंथ' को रखा, तो 'भारत ग्रंथ' सभी वेदों की तुलना में सबसे अधिक भारी सिद्ध हुआ। अत: 'भारत' ग्रंथ की इस महत्ता (महानता) को देखकर देवताओं और ऋषियों ने इसे 'महाभारत' नाम दिया और इस कथा के कारण मनुष्यों में भी यह काव्य 'महाभारत' के नाम से सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ।

ग्रन्थ लेखन की कथा

वेद व्यास से सुनकर भगवान गणेश महाभारत लिखते हुए। महाभारत में ऐसा वर्णन आता है कि वेदव्यास जी ने हिमालय की तलहटी की एक पवित्र गुफा में तपस्या में संलग्न तथा ध्यान योग में स्थित होकर महाभारत की घटनाओं का आदि से अन्त तक स्मरण कर मन ही मन में महाभारत की रचना कर ली। परन्तु इसके पश्चात उनके सामने एक गंभीर समस्या आ खड़ी हुई कि इस काव्य के ज्ञान को सामान्य जन साधारण तक कैसे पहुँचाया जाये क्योंकि इसकी

जटिलता और लम्बाई के कारण यह बहुत कठिन था कि कोई इसे बिना कोई गलती किए वैसा ही लिख दे जैसा कि वे बोलते जाएँ। इसलिए ब्रह्मा जी के कहने पर व्यास गणेश जी के पास पहुँचे। गणेश जी लिखने को तैयार हो गये, किंतु उन्होंने एक शर्त रखी कि कलम एक बार उठा लेने के बाद काव्य समाप्त होने तक वे बीच में नहीं रुकेंगे। व्यासजी जानते थे कि यह शर्त बहुत कठिनाईयाँ उत्पन्न कर सकती हैं अत: उन्होंने भी अपनी चतुरता से एक शर्त रखी कि कोई भी श्लोक लिखने से पहले गणेश जी को उसका अर्थ समझना होगा। गणेश जी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस तरह व्यास जी बीच-बीच में कुछ कठिन श्लोकों को रच देते थे, तो जब गणेश उनके अर्थ पर विचार कर रहे होते उतने समय में ही व्यास जी कुछ और नये श्लोक रच देते। इस प्रकार सम्पूर्ण महाभारत 3 वर्षों के अन्तराल में लिखी गयी। वेदव्यास जी ने सर्वप्रथम पुण्यकर्मा मानवों के उपाख्यानों सहित एक लाख श्लोकों का आद्य भारत ग्रंथ बनाया। तदन्तर उपाख्यानों को छोड़कर चौबीस हजार श्लोकों की भारत संहिता बनायी। तत्पश्चात व्यास जी ने साठ लाख श्लोकों की एक दूसरी संहिता बनायी, जिसके तीस लाख श्लोकों देवलोक में, पंद्रह लाख पितृलोक में तथा चौदह लाख श्लोक गन्धर्वलोक में समादृत हुए। मनुष्यलोक में एक लाख श्लोकों का आद्य भारत प्रतिष्ठित हुआ। महाभारत ग्रंथ की रचना पूर्ण करने के बाद वेदव्यास जी ने सर्वप्रथम अपने पुत्र शुकदेव को इस ग्रंथ का अध्ययन कराया तदन्तर अन्य शिष्यों वैशम्पायन, पैल, जैमिनि, असित-देवल आदि को इसका अध्ययन कराया। शुकदेव जी ने गन्धर्वों, यक्षों और राक्षसों को इसका अध्ययन कराया। देवर्षि नारद ने देवताओं को, असित-देवल ने पितरों को और वैशम्पायन जी ने मनुष्यों को इसका प्रवचन दिया। वैशम्पायन जी द्वारा महाभारत काव्य जनमेजय के यज्ञ समारोह में सूत सहित कई ऋषि-मुनियों को सुनाया गया था।

विशालता

महाभारत की विशालता और दार्शनिक गूढ़ता न केवल भारतीय मूल्यों का संकलन है बल्कि हिन्दू धर्म और वैदिक परम्परा का भी सार है। महाभारत की विशालता का अनुमान उसके प्रथमपर्व में उल्लेखित एक श्लोक से लगाया जा सकता है–

"जो यहाँ (महाभारत में) है वह आपको संसार में कहीं न कहीं अवश्य मिल जायेगा, जो यहाँ नहीं है वो संसार में आपको अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा"

पृष्ठभूमि और इतिहास

महाभारत कालीन भारत का मानचित्र

महाभारत चंद्रवंशियों के दो परिवारों कौरव और पाण्डव के बीच हुए युद्ध का वृत्तांत है। 100 कौरव भाइयों और पाँच पाण्डव भाइयों के बीच भूमि के लिए जो संघर्ष चला उससे अन्ततः महाभारत युद्ध का सृजन हुआ। इस युद्ध की भारतीय और पश्चिमी विद्वानों द्वारा कई भिन्न भिन्न निर्धारित की गयी तिथियाँ निम्नलिखित हैं-

- विश्व विख्यात भारतीय गणितज्ञ एवं खगोलज्ञ वराहमिहिर के अनुसार महाभारत युद्ध 2449 ईसा पूर्व हुआ था।
- विश्व विख्यात भारतीय गणितज्ञ एवं खगोलज्ञ आर्यभट के अनुसार महाभारत युद्ध 18 फरवरी 3102 ईसा पूर्व में हुआ था।
- चालुक्य राजवंश के सबसे महान सम्राट पुलकेसि 2 के 5वीं शताब्दी के ऐहोल अभिलेख में यह बताया गया है कि भारत युद्ध को हुए 3, 735 वर्ष बीत गए है, इस दृष्टिकोण से महाभारत का युद्ध 3100 ईसा पूर्व लड़ा गया होगा।

पुराणों की माने तो यह युद्ध 1900 ईसा पूर्व हुआ था, पुराणों में दी गई विभिन्न राज वंशावली को यदि चन्द्रगुप्त मौर्य से मिला कर देखा जाये तो 1900 ईसा पूर्व की तिथि निकलती है, परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य 1500 ईसा पूर्व में हुआ था, यदि यह माना जाये तो 3100 ईसा पूर्व की तिथि निकलती है, क्योंकि यूनान के राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक "इंडिका" में जिस चन्द्रगुप्त का उल्लेख किया था वो गुप्त वंश का राजा चन्द्रगुप्त भी हो सकता है।

अधिकतर पश्चिमी विद्वान जैसे–मायकल विटजल के अनुसार भारत युद्ध 1200 ईसा पूर्व में हुआ था, जो इसे भारत में लौह युग (1200-800 ईसा पूर्व) से जोड़कर देखते हैं।

अधिकतर भारतीय विद्वान जैसे–बी ऐन अचर, एन एस राजाराम, के सदानन्द, सुभाष काक ग्रह-नक्षत्रों की आकाशीय गणनाओं के आधार पर इसे 3067 ईसा पूर्व और कुछ यूरोपीय विद्वान जैसे–पी वी होले इसे 13 नवंबर 3143 ईसा पूर्व में आरम्भ हुआ मानते हैं।

भारतीय विद्वान पी वी वारटक महाभारत में वर्णित ग्रह-नक्षत्रों की आकाशीय गणनाओं के आधार पर इसे 16 अक्टूबर 5561 ईसा पूर्व में आरम्भ हुआ मानते हैं। उनके अनुसार यूनान के राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक

"इंडिका" में अपनी भारत यात्रा के समय जमुना (यमुना) के तट पर बसे मेथोरा (मथुरा) राज्य में शूरसेनियों से भेंट का वर्णन किया था, मेगस्थनीज ने यह बताया था कि ये शूरसेनी किसी हेराकल्स नामक देवता की पूजा करते थे और ये हेराकल्स काफी चमत्कारी पुरुष होता था तथा चन्द्रगुप्त से 138 पीढ़ी पहले था। हेराकल्स ने कई विवाह किए और कई पुत्र उत्पन्न किए। परन्तु उसके सभी पुत्र आपस में युद्ध करके मारे गये। यहाँ ये स्पष्ट है कि ये हेराकल्स श्रीकृष्ण ही थे, विद्वान इन्हें हरिकृष्ण कह कर श्रीकृष्ण से जोड़ते हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण चन्द्रगुप्त से 138 पीढ़ी पहले थे तो यदि एक पीढी को 20-30 वर्ष दे तो 3100-5600 ईसा पूर्व श्रीकृष्ण का जन्म समय निकलता है अत: इस आधार पर महाभारत का युद्ध 5600-3100 ईसा पूर्व के समय हुआ होगा।

कुरुवंश की उत्पत्ति और पाण्डु का राज्य अभिषेक

कुरुक्षेत्र में कृष्ण और अर्जुन

पुराणों के अनुसार ब्रह्मा जी से अत्रि, अत्रि से चन्द्रमा, चन्द्रमा से बुध और बुध से इला-नन्दन पुरूरवा का जन्म हुआ। उनसे आयु, आयु से राजा नहुष और नहुष से ययाति उत्पन्न हुए। ययाति से पुरू हुए। पूरू के वंश में भरत और भरत के कुल में राजा कुरु हुए। कुरु के वंश में शान्तनु हुए। शान्तनु से गंगानन्दन भीष्म उत्पन्न हुए। शान्तनु से सत्यवती के गर्भ से चित्रंगद और विचित्रवीर्य उत्पन्न हुए थे। चित्रंगद नाम वाले गन्धर्व के द्वारा मारे गये और राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा से ग्रस्त हो स्वर्गवासी हो गये। तब सत्यवती की आज्ञा से व्यासजी ने नियोग के द्वारा अम्बिका के गर्भ से धृतराष्ट्र और अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु को उत्पन्न किया। धृतराष्ट्र ने गांधारी द्वारा सौ पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था और पाण्डु के युधिष्टर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि पांच पुत्र हुए। धृतराष्ट्र जन्म से ही नेत्रहीन थे, अत: उनकी जगह पर पाण्डु को राजा बनाया गया। एक बार वन में आखेट खेलते हुए पाण्डु के बाण से एक मैथुनरत मृगरुपधारी ऋषि की मृत्यु हो गयी। उस ऋषि से शापित हो कि "अब जब कभी भी तू मैथुनरत होगा तो तेरी मृत्यु हो जायेगी', पाण्डु अत्यन्त दु:खी होकर अपनी रानियों सहित समस्त वासनाओं का त्याग करके तथा हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र को अपना का प्रतिनिधि बनाकर वन में रहने लगें।

पाण्डवों का जन्म तथा लाक्षागृह षडयन्त्र

राजा पाण्डु के कहने पर कुन्ती ने दुर्वासा ऋषि के दिये मन्त्र से धर्म को आमन्त्रित कर उनसे युधिष्ठिर और कालान्तर में वायुदेव से भीम तथा इन्द्र से अर्जुन को उत्पन्न किया। कुन्ती से ही उस मन्त्र की दीक्षा ले माद्री ने अश्वनीकुमारों से नकुल तथा सहदेव को जन्म दिया। एक दिन राजा पाण्डु माद्री के साथ वन में सरिता के तट पर भ्रमण करते हुए पाण्डु के मन चंचल हो जाने से मैथुन में प्रवृत हुये जिससे शापवश उनकी मृत्यु हो गई। माद्री उनके साथ सती हो गई किन्तु पुत्रों के पालन-पोषण के लिये कुन्ती हस्तिनापुर लौट आई। कुन्ती ने विवाह से पहले सूर्य के अंश से कर्ण को जन्म दिया और लोकलाज के भय से कर्ण को गंगा नदी में बहा दिया। धृतराष्ट्र के सारथी अधिरथ ने उसे बचाकर उसका पालन किया। कर्ण की रुचि युद्धकला में थी अतः द्रोणाचार्य के मना करने पर उसने परशुराम से शिक्षा प्राप्त की। शकुनि के छलकपट से दुर्योधन ने पाण्डवों को बचपन में कई बार मारने का प्रयत्न किया तथा युवावस्था में भी जब युधिष्ठिर को युवराज बना दिया गया तो लाक्ष के बने हुए घर लाक्षाग्रह में पाण्डवों को भेजकर उन्हें आग से जलाने का प्रयत्न किया, किन्तु विदुर की सहायता के कारण से वे उस जलते हुए गृह से बाहर निकल गये।

द्रौपदी स्वयंवर

पाण्डव वहाँ से एकचक्रा नगरी गये और मुनि का वेष बनाकर एक ब्राह्मण के घर में निवास करने लगे। फिर व्यास जी के कहने पर वे पांचाल राज्य में गये जहाँ द्रौपदी का स्वयंवर होनेवाला था। वहाँ एक के बाद एक सभी राजाओं एवं राजकुमारों ने मछली पर निशाना साधने का प्रयास किया किन्तु सफलता हाथ न लगी। तत्पश्चात् अर्जुन ने तैलपात्र में प्रतिबिम्ब को देखते हुये एक ही बाण से मत्स्य को भेद डाला और द्रौपदी ने आगे बढ़ कर अर्जुन के गले में वरमाला डाल दीं। माता कुन्ती के वचनानुसार पाँचों पाण्डवों ने द्रौपदी को पत्नीरूप में प्राप्त किया। द्रौपदी के स्वयंवर के समय दुर्योधन के साथ ही साथ द्रुपद, धृष्टद्युम्न एवं अनेक अन्य लोगों को सन्देह हो गया था कि वे पाँच ब्राह्मण पाण्डव ही हैं। अतः उनकी परीक्षा करने के लिये द्रुपद ने उन्हें अपने राजप्रासाद में बुलाया। राजप्रासाद में द्रुपद एवं धृष्टद्युम्न ने पहले राजकोष को दिखाया किन्तु पाण्डवों ने वहाँ रखे रत्नाभूषणों तथा रत्न-माणिक्य आदि में किसी प्रकार की रुचि नहीं दिखाई। किन्तु जब वे शस्त्रयगार में गये तो वहाँ रखे अस्त्र-शस्त्रों में उन सभी

ने बहुत अधिक रुचि दिखायी और अपनी पसन्द के शस्त्रों को अपने पास रख लिया। उनके क्रिया-कलाप से द्रुपद को विश्वास हो गया कि ये ब्राह्मणों के रूप में पाण्डव ही हैं।

इन्द्रप्रस्थ की स्थापना

द्रौपदी स्वयंवर से पूर्व विदुर को छोड़कर सभी पाण्डवों को मृत समझने लगे और इस कारण धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को युवराज बना दिया। गृहयुद्ध के संकट से बचने के लिए युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र द्वारा दिए खण्डहर स्वरूप खाण्डव वन को आधे राज्य के रूप में स्वीकार कर लिया। वहाँ अर्जुन ने श्रीकृष्ण के साथ मिलकर समस्त देवताओं को युद्ध में परास्त करते हुए खाण्डववन को जला दिया और इन्द्र के द्वारा की हुई वृष्टि का अपने बाणों के छत्रकार बाँध से निवारण करके अग्नि देव को तृप्त किया। इसके फलस्वरूप अर्जुन ने अग्निदेव से दिव्य गाण्डीव धनुष और उत्तम रथ तथा श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र प्राप्त किया। इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन की वीरता देखकर अतिप्रसन्न हुए। उन्होंने खांडवप्रस्थ के वनों को हटा दिया। उसके उपरांत पाण्डवों ने श्रीकृष्ण के साथ मय दानव की सहायता से उस शहर का सौन्दर्यीकरण किया। वह शहर द्वितीय स्वर्ग के समान हो गया। इन्द्र के कहने पर देव शिल्पी विश्वकर्मा और मय दानव ने मिलकर खाण्डव वन को इन्द्रपुरी जितने भव्य नगर में निर्मित कर दिया, जिसे इन्द्रप्रस्थ नाम दिया गया।

द्रौपदी का अपमान और पाण्डवों का वनवास

पाण्डवों ने सम्पूर्ण दिशाओं पर विजय पाते हुए प्रचुर सुवर्णराशि से परिपूर्ण राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया। उनका वैभव दुर्योधन के लिये असह्य हो गया अत: शकुनि, कर्ण और दुर्योधन आदि ने युधिष्ठिर के साथ जुए में प्रवृत्त होकर उसके भाइयों, द्रौपदी और उनके राज्य को कपट द्यूत के द्वारा हँसते-हँसते जीत लिया और कुरु राज्य सभा में द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयास किया। परन्तु गांधारी ने आकर ऐसा होने से रोक दिया। धृतराष्ट्र ने एक बार फिर दुर्योधन की प्रेरणा से उन्हें से जुआ खेलने की आज्ञा दी। यह तय हुआ कि एक ही दांव में जो भी पक्ष हार जाएगा, वे मृगचर्म धारण कर बारह वर्ष वनवास करेंगे और एक वर्ष अज्ञातवास में रहेंगे। उस एक वर्ष में भी यदि उन्हें पहचान लिया गया तो फिर से बारह वर्ष का वनवास भोगना होगा। इस प्रकार पुन जुए में परास्त होकर युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित वन में चले गये। वहाँ बारहवाँ वर्ष बीतने पर एक

वर्ष के अज्ञातवास के लिए वे विराट नगर में गये। जब कौरव विराट की गौओं को हरकर ले जाने लगे, तब उन्हें अर्जुन ने परास्त किया। उस समय कौरवों ने पाण्डवों को पहचान लिया था परन्तु उनका का अज्ञातवास तब तक पूरा हो चुका था। परन्तु 12 वर्षो के ज्ञात और एक वर्ष के अज्ञातवास पूरा करने के बाद भी कौरवों ने पाण्डवों को उनका राज्य देने से मना कर दिया।

शांतिदूत श्रीकृष्ण, युद्ध आरम्भ तथा गीता-उपदेश

धर्मराज युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेना के स्वामी होकर कौरवों के साथ युद्ध करने को तैयार हुए। पहले भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास दूत बनकर गये। उन्होंने ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी राजा दुर्योधन से कहा कि तुम युधिष्ठिर को आधा राज्य दे दो या केवल पाँच ही गाँव अर्पित कर युद्ध टाल दो।

श्रीकृष्ण की बात सुनकर दुर्योधन ने पाण्डवों को सुई की नोक के बराबर भूमि भी देने से मना कर युद्ध करने का निशचय किया। ऐसा कहकर वह भगवान श्रीकृष्ण को बंदी बनाने के लिये उद्यत हो गया। उस समय राजसभा में भगवान श्रीकृष्ण ने माया से अपने परम दुर्धर्ष विश्वरूप का दर्शन कराकर सबको भयभीत कर दिया। तदनन्तर वे युधिष्ठिर के पास लौट गये और बोले कि दुर्योधन के साथ युद्ध करो। युधिष्ठिर और दुर्योधन की सेनाएँ कुरुक्षेत्र के मैदान में जा डटीं। अपने विपक्ष में पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण आदि गुरुजनों को देखकर अर्जुन युद्ध से विरत हो गये।

तब भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे कहा-पार्थ! भीष्म आदि गुरुजन शोक के योग्य नहीं हैं। मनुष्य का शरीर विनाशशील है, किंतु आत्मा का कभी नाश नहीं होता। यह आत्मा ही परब्रह्म है। 'मैं ब्रह्म हूँ'- इस प्रकार तुम उस आत्मा का अस्तित्त्व समझो। कार्य की सिद्धि और असिद्धि में समानभाव से रहकर कर्मयोग का आश्रय ले क्षात्रधर्म का पालन करो। इस प्रकार श्रीकृष्ण के ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग के बारे में विस्तार से कहने पर अर्जुन ने फिर से रथारूढ़ हो युद्ध के लिये शंखध्वनि की।

दुर्योधन की सेना में सबसे पहले पितामह भीष्म सेनापति हुए। पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न, थे। इन दोनों में भारी युद्ध छिड़ गया। भीष्मसहित कौरव पक्ष के योद्धा उस युद्ध में पाण्डव-पक्ष के सैनिकों पर प्रहार करने लगे और शिखण्डी आदि पाण्डव- पक्ष के वीर कौरव-सैनिकों को अपने बाणों का निशाना बनाने लगे। कौरव और पाण्डव-सेना का वह युद्ध, देवासुर-संग्राम के समान जान पड़ता

था। आकाश में खड़े होकर देखने वाले देवताओं को वह युद्ध बड़ा आनन्ददायक प्रतीत हो रहा था। भीष्म ने दस दिनों तक युद्ध करके पाण्डवों की अधिकांश सेना को अपने बाणों से मार गिराया।

भीष्म और द्रोण वध

भीष्म ने दस दिनों तक युद्ध करके पाण्डवों की अधिकांश सेना को अपने बाणों से मार गिराया। भीष्म की मृत्यु उनकी इच्छा के अधीन थी। श्रीकृष्ण के सुझाव पर पाण्डवों ने भीष्म से ही उनकी मृत्यु का उपाय पूछा। भीष्म ने कहा कि पांडव शिखंडी को सामने करके युद्ध लड़ें। भीष्म उसे कन्या ही मानते थे और उसे सामने पाकर वो शस्त्र नहीं चलाने वाले थे। और शिखंडी को अपने पूर्व जन्म के अपमान का बदला भी लेना था उसके लिये शिवजी से वरदान भी लिया कि भीष्म कि मृत्यु का कारण बनेगी। 10वें दिन के युद्ध में अर्जुन ने शिखंडी को आगे अपने रथ पर बिठाया और शिखंडी को सामने देख कर भीष्म ने अपना धनुष त्याग दिया और अर्जुन ने अपनी बाणवृष्टि से उन्हें बाणों की शय्या पर सुला दिया। तब आचार्य द्रोण ने सेनापतित्त्व का भार ग्रहण किया। फिर से दोनों पक्षों में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। विराट और द्रुपद आदि राजा द्रोणरूपी समुद्र में डूब गये थे। लेकिन जब पाण्डवों ने छ्ल से द्रोण को यह विश्वास दिला दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। तो आचार्य द्रोण ने निराश हों अस्त्र-शस्त्र त्यागकर उसके बाद योग समाधि ले कर अपना शरीर त्याग दिया। ऐसे समय में धृष्टद्युम्न ने योग समाधि लिए द्रोण का मस्तक तलवार से काट कर भूमि पर गिरा दिया।

कर्ण और शल्य वध

द्रोण वध के पश्चात कर्ण कौरव सेना का कर्णधार हुआ। कर्ण और अर्जुन में भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्रों से युक्त महाभयानक युद्ध हुआ, जो देवासुर-संग्राम को भी मात करने वाला था। कर्ण और अर्जुन के संग्राम में कर्ण ने अपने बाणों से शत्रु-पक्ष के बहुत-से वीरों का संहार कर डाला। यद्यपि युद्ध गतिरोधपूर्ण हो रहा था लेकिन कर्ण तब उलझ गया जब उसके रथ का एक पहिया धरती में धँस गया। गुरु परशुराम के शाप के कारण वह अपने को दैवीय अस्त्रों के प्रयोग में भी असमर्थ पाकर रथ के पहिए को निकालने के लिए नीचे उतरता है। तब श्रीकृष्ण, अर्जुन को उसके द्वारा किये अभिमन्यु वध, कुरु सभा में द्रोपदी को वेश्या और उसकी कर्ण वध करने की प्रतिज्ञा याद दिलाकर उसे मारने को कहते

हैं, तब अर्जुन ने एक दैवीय अस्त्र से कर्ण का सिर धड़ से अलग कर दिया। तदनन्तर राजा शल्य कौरव-सेना के सेनापति हुए, किंतु वे युद्ध में आधे दिन तक ही टिक सके। दोपहर होते-होते राजा युधिष्ठिर ने उन्हें मार दिया।

दुर्योधन वध और महाभारत युद्ध की समाप्ति

दुर्योधन की सारी सेना के मारे जाने पर अन्त में उसका भीमसेन के साथ गदा युद्ध हुआ। भीम ने छ्ल से उसकी जांघ पर प्रहार करके उसे मार डाला। इसका प्रतिशोध लेने के लिये अश्वत्थामा ने रात्रि में पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों, उसके पांचालदेशीय बन्धुओं तथा धृष्टद्युम्न को सदा के लिये सुला दिया। तब अर्जुन ने अश्वत्थामा को परास्त करके उसके मस्तक की मणि निकाल ली। फिर अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। उसका गर्भ उसके अस्त्र से प्राय दग्ध हो गया था, किंतु भगवान श्रीकृष्ण ने उसको पुनः जीवन-दान दिया। उत्तरा का वही गर्भस्थ शिशु आगे चलकर राजा परीक्षित के नाम से विख्यात हुआ। इस युद्ध के अंत में कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा तीन कौरवपक्षिय और पाँच पाण्डव, सात्यकि तथा श्रीकृष्ण ये सात पाण्डवपक्षिय वीर जीवित बचे। तत्पश्चात् युधिष्ठिर राजसिंहासन पर आसीन हुए।

यदुकुल का संहार और पाण्डवों का महाप्रस्थान

ब्राह्मणों और गांधारी के शाप के कारण यादवकुल का संहार हो गया। बलभद्रजी योग से अपना शरीर त्याग कर शेषनाग स्वरूप होकर समुद्र में चले गये। भगवान कृष्ण के सभी प्रपौत्र एक दिन महामुनियों की शक्ति देखने के लिये एक को स्त्री बनाकर मुनियों के पास गए और पूछा कि हे मुनिश्रेष्ठ! यह महिला गर्भ से है, हमें बताएं कि इसके गर्भ से किसका जन्म होगा? मुनियों को ज्ञात हुआ कि यह बालक उनसे क्रीड़ा करते हुए एक पुरुष को महिला बना उनके पास लाए हैं। मुनियों ने कृष्ण के प्रपौत्रों को श्रापा कि इस मानव के गर्भ से एक मूसल लिकलेगा जिससे तुम्हारे वंश का अन्त होगा। कृष्ण के प्रपौत्रों ने उस मूसल को पत्थर पर रगड़ कर चूरा बना नदी में बहा दिया तथा उसके नोक को फेंक दिया। उस चूर्ण से उत्पन्न वृक्ष की पत्तियों से सभी कृष्ण के प्रपौत्र मृत्यु को प्राप्त किये। यह देख श्रीकृष्ण भी एक पेड़ के नीचे ध्यान लगाकर बेठ गये। 'जरा' नाम के एक व्याध (शिकारी) ने अपने बाण की नोक पर मूसल का नोक लगा दिया तथा भगवान कृष्ण के चरणकमल को मृग समझकर उस बाण से प्रहार

किया। उस बाण द्वारा कृष्ण के पैर का चुम्बन उनके परमधाम गमन का कारण बना। प्रभु अपने संपूर्ण शरीर के साथ गोलोक प्रस्थान किये। इसके बाद समुद्र ने द्वारकापुरी को अपने जल में डुबा दिया। तदनन्तर द्वारका से लौटे हुए अर्जुन के मुख से यादवों के संहार का समाचार सुनकर युधिष्ठिर ने संसार की अनित्यता का विचार करके परीक्षित को राजासन पर बिठाया और द्रौपदी तथा भाइयों को साथ ले हिमालय की तरफ महाप्रस्थान के पथ पर अग्रसर हुए। उस महापथ में युधिष्ठिर को छोड़ सभी एक-एक करके गिर पड़े। अन्त में युधिष्ठिर इन्द्र के रथ पर आरूढ़ हो (दिव्य रूप धारी) भाइयों सहित स्वर्ग को चले गये और अधिक यहाँ महाभारत के पात्र दिखाएँ, देवासं कुरु वंश वृक्ष–

- अभिमन्यु–अर्जुन के वीर पुत्र जो कुरुक्षेत्र युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुये।
- अम्बा–शिखन्डी पूर्व जन्म में अम्बा नामक राजकुमारी था।
- अम्बिका–विचित्रवीर्य की पत्नी, अम्बा और अम्बालिका की बहिन।
- अम्बालिका–विचित्रवीर्य की पत्नी, अम्बा और अम्बिका की बहिन।
- अर्जुन–देवराज इन्द्र द्वारा कुन्ती एवं पान्डु का पुत्र। एक अतुलनीय धनुर्धर जिसको श्री कृष्ण ने श्रीमद् भगवद् गीता का उपदेश दिया था।
- वाहन–अर्जुन एवं चित्रंग्दा का पुत्र।
- बकासुर–महाभारत काव्य में एक असुर जिसको भीम ने मार कर एक गांव के वासियों की रक्षा की थी।
- भीष्म–भीष्म का नामकरण देवव्रत के नाम से हुआ था। वे शान्तनु एवं गंगा के पुत्र थे। जब देवव्रत ने अपने पिता की प्रसन्नता के लिये आजीवन ब्रह्मचारी रहने का प्रण लिया, तब से उनका नाम भीष्म हो गया।
- द्रौपदी–द्रुपद की पुत्री जो अग्नि से प्रकट हुई थी। द्रौपदी पांचों पांड्वों की अर्धांगिनी थी और उसे आज प्राचीनतम् नारीवादिनियों में एक माना जाता है।
- द्रोण–हस्तिनापुर के राजकुमारों को शस्त्र विद्या देने वाले ब्राह्मण गुरु। अश्वत्थामा के पिता। यह विश्व के प्रथम "टेस्ट-टयूब बेबी" थे। द्रोण एक प्रकार का पात्र होता है।
- द्रुपद–पांचाल के राजा और द्रौपदी एवमं धृष्टद्युम्न के पिता। द्रुपद और द्रोण बाल्यकाल के मित्र थे!
- दुर्योधन–कौरवों में ज्येष्ठ। धृतराष्ट्र एवं गांधारी के 100 पुत्रों में सबसे बड़े।

- दु:शासन–दुर्योधन से छोटा भाई जो द्रौपदी को हस्तिनपुर राज्यसभा में बालों से पकड़ कर लाया था। कुरुक्षेत्र युद्ध में भीम ने दु:शासन की छाती का रक्त पिया था।
- एकलव्य–द्रोण का एक महान शिष्य जिससे गुरुदक्षिणा में द्रोण ने उसका अंगूठा मांगा था।
- गांडीव–अर्जुन का धनुष। जो, कई मान्यताओं के अनुसार, भगवान शिव से इंद्र और उसके बाद अग्नि देव अंत में अग्नि-देव ने अर्जुन को दिया था।,
- गांधारी–गंधार के राजा की पुत्री और धृतराष्ट्र की पत्नी।
- जयद्रथ–सिन्धु के राजा और धृतराष्ट्र के दामाद। कुरुक्षेत्र युद्ध में अर्जुन ने जयद्रथ का शीश काट कर वध किया था।
- कर्ण–सूर्यदेव एवमं कुन्ती के पुत्र और पाण्डवों के सबसे बड़े भाई। कर्ण को दानवीर-कर्ण के नाम से भी जाना जाता है। कर्ण कवच एवं कुंडल पहने हुए पैदा हुये थे और उनका दान इंद्र को किया था।
- कृपाचार्य–हस्तिनापुर के ब्राह्मण गुरु। इनकी बहिन 'कृपि' का विवाह द्रोण से हुआ था।
- कृष्ण–देवकी की आठवीं सन्तान जिसने अपने मामा कंस का वध किया था। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र युद्ध के प्रारम्भ में गीता उपदेश दिया था। श्री कृष्ण, भगवान विष्णु के आठवें अवतार थे।
- कुरुक्षेत्र–वह क्षेत्र जहाँ महाभारत का महान युद्ध हुआ था। यह क्षेत्र आज के भारत में हरियाणा में स्थित है।
- पाण्डव–पाण्डु की कुन्ती और माद्री से सन्तानें। यह पांच भाई थे– युद्धिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव।
- परशुराम–अर्थात् परशु वाले राम। वे द्रोण, भीष्म और कर्ण जैसे–महारथियों के गुरु थे। वे भगवान विष्णु का षष्ठम अवतार थे।
- शल्य–नकुल और सहदेव की माता माद्री के भाई।
- उत्तरा–राजा विराट की पुत्री। अभिमन्यु कि धर्मपत्नी।
- महर्षि व्यास–महाभारत महाकाव्य के लेखक। पाराशर और सत्यवती के पुत्र। इन्हें कृष्ण द्वैपायन के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि वे कृष्णवर्ण के थे तथा उनका जन्म एक द्वीप में हुआ था।
- बलराम–देवकी की सातवीं संतान और शेषनाग के अवतार थे। मान्यता है कि इन्हें नंद की दूसरी पत्नी रोहिणी ने कंस से बचने के लिए देवकी गर्भ से बलराम को धारण किया था।

- सुभद्रा–यह महारथी अर्जुन की पत्नी एवं भगवान कृष्ण तथा बलराम की बहन थी।
- रुक्मिणी–कृष्णा की पत्नी,
- महाभारत: अनुपम काव्य
- विभिन्न भाग एवं रूपान्तर
- महाभारत के कई भाग हैं, जो आमतौर पर अपने आप में एक अलग और पूर्ण पुस्तकें मानी जाती हैं। मुख्य रूप से इन भागों को अलग से महत्व दिया जाता है–
- भगवद गीता श्री कृष्ण द्वारा भीष्मपर्व में अर्जुन को दिया गया उपदेश।
- दमयन्ती अथवा नल दमयन्ती, अरण्यकपर्व में एक प्रेम कथा।
- कृष्णवार्ता–भगवान श्री कृष्ण की कहानी।
- राम रामायण का अरण्यकपर्व में एक संक्षिप्त रूप।
- शृयशृंग एकशृषि की प्रेम कथा।
- विष्णुसहस्रनाम विष्णु के 1000 नामों की महिमा शान्तिपर्व में।

महाभारत के दक्षिण एशिया में कई रूपान्तर मिलते हैं, इण्डोनेशिया, श्रीलंका, जावा द्वीप, जकार्ता, थाइलैंड, तिब्बत, बर्मा (म्यान्मार) में महाभारत के भिन्न-भिन्न रूपान्तर मिलते हैं। दक्षिण भारतीय महाभारत में अधिकतम 1,40,000 श्लोक मिलते हैं, जबकि उत्तर भारतीय महाभारत के रूपान्तर में 1,10,000 श्लोक मिलते हैं।

अठारह की संख्या

महाभारत की मूल अभिकल्पना में अठारह की संख्या का विशिष्ट योग हैं। कौरव और पाण्डव पक्षों के मध्य हुए युद्ध की अवधि अठारह दिन थी। दोनों पक्षों की सेनाओं का सम्मिलित संख्याबल भी अठारह अक्षौहिणी था। इस युद्ध के प्रमुख सूत्रधार भी अठारह हैं। महाभारत की प्रबन्ध योजना में सम्पूर्ण ग्रंथ को अठारह पर्वों में विभक्त किया गया है और महाभारत में भीष्म पर्व के अन्तर्गत वर्णित श्रीमद्भगवद्गीता में भी अठारह अध्याय हैं। सम्पूर्ण महाभारत अठारह पर्वों में विभक्त हैं।

आद्य भारत

महाभारत के आदिपर्व के अनुसार वेदव्यास जी ने सर्वप्रथम पुण्यकर्मा मानवों के उपाख्यानों सहित एक लाख श्लोकों का आद्य भारत ग्रंथ बनाया।

तदन्तर उपाख्यानों को छोड़कर चौबीस हजार श्लोकों की भारत संहिता बनायी। तत्पश्चात व्यास जी ने साठ लाख श्लोकों की एक दूसरी संहिता बनायी, जिसके तीस लाख श्लोक देवलोक में, पन्द्रह लाख पितृलोक में तथा चौदह लाख श्लोक गन्धर्वलोक में समादृत हुए। मनुष्यलोक में एक लाख श्लोकों का आद्य भारत प्रतिष्ठित हुआ।

पृथ्वी के भौगोलिक सन्दर्भ

महाभारत में भारत के अतिरिक्त विश्व के कई अन्य भौगोलिक स्थानों का सन्दर्भ भी आता है जैसे–चीन का गोबी मरुस्थल, मिस्र की नील नदी, लाल सागर तथा इसके अतिरिक्त महाभारत के भीष्म पर्व के जम्बूखण्ड-विनिर्माण पर्व में सम्पूर्ण पृथ्वी का मानचित्र भी बताया गया है, जो निम्नलिखित है–

सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन। परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः।
यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः। एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले।
द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान्।
वेद व्यास, भीष्म पर्व, महाभारत

अर्थातः हे कुरुनन्दन! सुदर्शन नामक यह द्वीप चक्र की भाँति गोलाकार स्थित है, जैसे–पुरुष दर्पण में अपना मुख देखता है, उसी प्रकार यह द्वीप चन्द्रमण्डल में दिखायी देता है। इसके दो अंशों में पिप्पल और दो अंशो में महान शश (खरगोश) दिखायी देता है। अब यदि उपरोक्त संरचना को कागज पर बनाकर व्यवस्थित करें तो हमारी पृथ्वी का मानचित्र बन जाता है, जो हमारी पृथ्वी के वास्तविक मानचित्र से बहुत समानता दिखाता है–

प्रचलित मीडिया में

- 1988 के लगभग बी आर चोपड़ा निर्मित महाभारत, भारत में दूरदर्शन पर पहली बार धारावाहिक रूप में प्रसारित हुआ।
- 1989 में पीटर ब्रुक द्वारा पहली बार यह फिल्म अंग्रेजी में बनी।
- महाभारत नाम से सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने भी साहित्यिक कृति है।
- कहानियाँ हमारे महाभारत की नाम से एकता कपूर ने भी एक दूरदर्शन धारावाहिक बनाया था, जिसका प्रसारण 2007 में 9 एक्स चौनल पर किया जाता था।
- एक और महाभारतः भारतीय रेल के अधिकारियों तथा विभिन्न कर्मचारियों द्वारा कहानी संग्रह।

- कुरुक्षेत्र में एक महाभारत दीर्घा का निर्माण हो रहा है, जिसमें तब के कुछ दृश्यों को जीवंत हुआ देखा जा सकेगा।
- 1000 महाभारत प्रश्नोत्तरी नामक पुस्तक, में महाभारत के गहन ज्ञान पर गुप्त 1000 प्रश्न हैं।

4

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र, कौटिल्य या चाणक्य (चौथी शती ईसापूर्व) द्वारा रचित संस्कृत का एक ग्रन्थ है। इसमें राज्यव्यवस्था, कृषि, न्याय एवं राजनीति आदि के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। अपने तरह का (राज्य-प्रबन्धन विषयक) यह प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसकी शैली उपदेशात्मक और सलाहात्मक (Instructional) है।

यह प्राचीन भारतीय राजनीति का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसके रचनाकार का व्यक्तिनाम विष्णुगुप्त, गोत्रनाम कौटिल्य (कुटिल से व्युत्पत्र) और स्थानीय नाम चाणक्य (पिता का नाम चणक होने से) था। अर्थशास्त्र (15.431) में लेखक का स्पष्ट कथन है–

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदंकृतम् इति।

इस ग्रंथ की रचना उन आचार्य ने की जिन्होंने अन्याय तथा कुशासन से क्रुद्ध होकर नन्दों के हाथ में गए हुए शस्त्र, शास्त्र एवं पृथ्वी का शीघ्रता से उद्धार किया था।

चाणक्य सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य (321-298 ई.पू.) के महामंत्री थे। उन्होंने चंद्रगुप्त के प्रशासकीय उपयोग के लिए इस ग्रंथ की रचना की थी। यह मुख्यतः सूत्रशैली में लिखा हुआ है और संस्कृत के सूत्रसाहित्य के काल और परंपरा में रखा जा सकता है। यह शास्त्र अनावश्यक विस्तार से रहित, समझने और ग्रहण

करने में सरल एवं कौटिल्य द्वारा उन शब्दों में रचा गया है जिनका अर्थ सुनिश्चित हो चुका है। (अर्थशास्त्र, 15.6)।

अर्थशास्त्र में समसामयिक राजनीति, अर्थनीति, विधि, समाजनीति, तथा धर्मादि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस विषय के जितने ग्रंथ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें से वास्तविक जीवन का चित्रण करने के कारण यह सबसे अधिक मूल्यवान् है। इस शास्त्र के प्रकाश में न केवल धर्म, अर्थ और काम का प्रणयन और पालन होता है अपितु अधर्म, अनर्थ तथा अवांछनीय का शमन भी होता है (अर्थशास्त्र, 15.431)।

इस ग्रंथ की महत्ता को देखते हुए कई विद्वानों ने इसके पाठ, भाषांतर, व्याख्या और विवेचन पर बड़े परिश्रम के साथ बहुमूल्य कार्य किया है। शाम शास्त्री और गणपति शास्त्री का उल्लेख किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त यूरोपीय विद्वानों में हर्मान जाकोबी (ऑन दि अथॉरिटी ऑव कौटिलीय, इं.ए., 1918), ए. हिलेब्रांड्ट, डॉ. जॉली, प्रो.ए.बी. कीथ (ज.रा.ए.सी.) आदि के नाम आदर के साथ लिए जा सकते हैं। अन्य भारतीय विद्वानों में डॉ. नरेन्द्रनाथ ला (स्टडीज इन ऐंशेंट हिंदू पॉलिटी, 1914), श्री प्रमथनाथ बनर्जी (पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ऐंशेंट इंडिया), डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल (हिंदू पॉलिटी), प्रो. विनयकुमार सरकार (दि पाजिटिव बैकग्राउंड ऑव् हिंदू सोशियोलॉजी), प्रो. नारायणचंद्र वंद्योपाध्याय, डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इतिहास

यद्यपि कतिपय प्राचीन लेखकों ने अपने ग्रंथों में अर्थशास्त्र से अवतरण दिए हैं और कौटिल्य का उल्लेख किया है, तथापि यह ग्रंथ लुप्त हो चुका था। 1904 ई. में तंजोर के एक पंडित ने भट्टस्वामी के अपूर्ण भाष्य के साथ अर्थशास्त्र का हस्तलेख मैसूर राज्य पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री आर. शाम शास्त्री को दिया। श्री शास्त्री ने पहले इसका अंशत: अंग्रेजी भाषान्तर 1905 ई. में "इंडियन ऐंटिक्वेरी" तथा "मैसूर रिव्यू" (1906-1909) में प्रकाशित किया। इसके पश्चात् इस ग्रंथ के दो हस्तलेख म्यूनिख लाइब्रेरी में प्राप्त हुए और एक संभवत: कलकत्ता में। तदनन्तर शाम शास्त्री, गणपति शास्त्री, यदुवीर शास्त्री आदि द्वारा अर्थशास्त्र के कई संस्करण प्रकाशित हुए। शाम शास्त्री द्वारा अंग्रेजी भाषान्तर का चतुर्थ संस्करण (1929 ई.) प्रामाणिक माना जाता है।

पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही भारत तथा पाश्चात्य देशों में हलचल-सी मच गई क्योंकि इसमें शासन-विज्ञान के उन अद्‌भुत तत्त्वों का वर्णन पाया गया, जिनके सम्बन्ध में भारतीयों को सर्वथा अनभिज्ञ समझा जाता था। पाश्चात्य विद्वान "लीट, जौली आदि ने इस पुस्तक को एक 'अत्यन्त महत्त्वपूर्ण' ग्रंथ बतलाया और इसे भारत के प्राचीन इतिहास के निर्माण में परम सहायक साधन स्वीकार किया।

संरचना

ग्रंथ के अंत में दिए चाणक्यसूत्र (15.1) में अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार हुई है–

मनुष्यों की वृत्ति को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से संयुक्त भूमि ही अर्थ है। उसकी प्राप्ति तथा पालन के उपायों की विवेचना करनेवाले शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं।

इसके मुख्य विभाग हैं–

(1) विनयाधिकरण,
(2) अध्यक्षप्रचार,
(3) धर्मस्थीयाधिकरण,
(4) कंटकशोधन,
(5) वृत्ताधिकरण,
(6) योन्यधिकरण,
(7) षाड्‌गुण्य,
(8) व्यसनाधिकरण,
(9) अभियास्यत्कर्माधिकरणा,
(10) संग्रामाधिकरण,
(11) संघवृत्ताधिकरण,
(12) आबलीयसाधिकरण,
(13) दुर्गलम्भोपायाधिकरण,
(14) औपनिषदिकाधिकरण और
(15) तंत्रयुक्त्यधिकरण।

इन अधिकरणों के अनेक उपविभाग (15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 उपविभाग तथा 6,000 श्लोक) हैं।

अमात्य–अर्थशास्त्र के अनुसार प्राचीन हिन्दू राज्य के पदाधिकारी

पद	अंग्रेजी	पद	अंग्रेजी
राजा	King	युवराज	Crown prince
सेनापति	Chief armed forces	परिषद्	Council
नागरिक	City manager	पौरव्य वाहारिक	City overseer
मन्त्री	Counselor	कार्मिक	Works officer
संनिधाता	Treasurer	कार्मान्तरिक	Director, factories
अन्तेपाल	Frontier commander	अन्तर विंसक	Head, guards
दौवारिक	Chief guard	गोप	Revenue officer
पुरोहित	Chaplain	करणिक	Accounts officer
प्रशास्ता	Administrator	नायक	Commander
उपयुक्त	Junior officer	प्रदेष्टा	Magistrate
शून्यपाल	Regent	अध्यक्ष	Superintendent

पुस्तक का नाम 'अर्थशास्त्र' ही क्यों?

कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' राजनीतिक सिद्धांतों की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इस संबंध में यह प्रश्न उठता है कि कौटिल्य ने अपनी पुस्तक का नाम 'अर्थशास्त्र' क्यों रखा? प्राचीनकाल में 'अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग एक व्यापक अर्थ में होता था। इसके अन्तगर्त मूलतः राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कानून आदि का अध्ययन किया जाता था। आचार्य कौटिल्य की दृष्टि में राजनीति शास्त्र एक स्वतंत्र शास्त्र है और आन्वीक्षिकी (दर्शन), त्रयी (वेद) तथा वार्ता एवं कानून आदि उसकी शाखाएँ हैं। सम्पूर्ण समाज की रक्षा राजनीति या दण्ड व्यवस्था से होती है या रक्षित प्रजा ही अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकती है।

उस समय अर्थशास्त्र को राजनीति और प्रशासन का शास्त्र माना जाता था। महाभारत में इस संबंध में एक प्रसंग है, जिसमें अर्जुन को अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ माना गया है।

समाप्तवचने तस्मिन्नर्थशास्त्र विशारदः।

पार्थो धर्मार्थतत्त्वज्ञो जगौ वाक्यमनन्द्रितः

निश्चित रूप से कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी राजशास्त्र के रूप में लिया गया होगा, यों उसने अर्थ की कई व्याख्याएँ की हैं। कौटिल्य ने कहा है–

मनुष्याणां वृतिरर्थः अर्थात् मनुष्यों की जीविका को 'अर्थ' कहते हैं। अर्थशास्त्र की व्याख्या करते हुए उसने कहा है–तस्या पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थ-शास्त्रमिति। (मनुष्यों से युक्त भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।) इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था दोनों से संबंधित सिद्धांतों का समावेश है। वस्तुतः कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' को केवल राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था का शास्त्र कहना उपयुक्त नहीं होगा। वास्तव में, यह अर्थव्यवस्था, राजव्वस्था, विधि व्यवस्था, समाज व्यवस्था और धर्म व्यवस्था से संबंधित शास्त्र है।

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के पूर्व और भी कई अर्थशास्त्रों की रचना की गयी थी, यद्यपि उनकी पांडुलिपियाँ उपलब्ध नहीं हैं। भारत में प्राचीन काल से ही अर्थ, काम और धर्म के संयोग और सम्मिलन के लिए प्रयास किये जाते रहे हैं और उसके लिये शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों में विशद् चर्चाएँ की गयी हैं। कौटिल्य ने भी 'अर्थशास्त्र' में अर्थ, काम और धर्म की प्राप्ति के उपायों की व्याख्या की है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में भी अर्थ, धर्म और काम के संबंध में सूत्रों की रचना की गयी है।

अपने पूर्व अर्थशास्त्रों की रचना की बात स्वयं कौटिल्य ने भी स्वीकार किया है। अपने 'अर्थशास्त्र' में कई सन्दर्भों में उसने आचार्य वृहस्पति, भारद्वाज, शुक्राचार्य, पराशर, पिशुन, विशालाक्ष आदि आचार्यों का उल्लेख किया है। कौटिल्य के पूर्व अनेक आचार्यों के ग्रंथों का नामकरण दंडनीति के रूप में किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य के पूर्व शास्त्र दंडनीति कहे जाते थे और वे अर्थशास्त्र के समरूप होते थे। परन्तु जैसा कि अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है कि दंडनीति और अर्थशास्त्र दोनों समरूप नहीं हैं। यू. एन. घोषाल के कथनानुसार अर्थशास्त्र ज्यादा व्यापक शास्त्र है, जबकि दंडनीति मात्र उसकी शाखा है।

कौटिल्य के पाश्चात् लिखे गये शास्त्र 'नीतिशास्त्र' के नाम से विख्यात हुए, जैसे–कामंदक नीतिसार। वैसे कई विद्वानों ने अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र की अपेक्षा ज्यादा व्यापक माना है। परन्तु, अधिकांश विद्वानों की राय में नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों समरूप हैं तथा दोनों के विषय क्षेत्र भी एक ही हैं। स्वयं कामंदक ने नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को समरूप माना है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के पूर्व और उसके बाद भी 'अर्थशास्त्र' जैसे–शास्त्रों की रचना की गयी।

'अर्थशास्त्र' का रचनाकार

इस संबंध में ऐसे विद्वानों की अच्छी-खासी संख्या है, जो यह मानते हैं कि कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार नहीं था। ऐसे विद्वानों में पाश्चात्य विद्वानों की संख्या ज्यादा है। स्टेन, जॉली, विंटरनीज व कीथ इस प्रकार के विचार के प्रतिपादक हैं। भारतीय विद्वान आर. जी. भण्डारकर ने भी इसका समर्थन किया है। भंडारकर ने कहा है कि पतंजलि ने महाभाष्य में कौटिल्य का उल्लेख नहीं किया है। 'अर्थशास्त्र' के रचयिता के रूप में कौटिल्य को नहीं मान्यता देनेवालों ने अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये है–

(1) 'अर्थशास्त्र' में मौर्य साम्राज्य या पाटलिपुत्र का कहीं कोई जिक्र नहीं मिलता है। यदि चन्द्रगुप्त का मंत्री कौटिल्य अर्थशास्त्र का रचनाकार होता तो 'अर्थशास्त्र' में उसका कहीं-न-कहीं कुछ जिक्र करता ही।

(2) इस संबंध में यह कहा जाता है कि 'अर्थशास्त्र' की विषय-वस्तु जिस प्रकार की है, उससे यह नहीं प्रतीत होता है कि इसका रचनाकार कोई व्यावहारिक राजनीतिज्ञ होगा। नि:सन्देह कोई शास्त्रीय पंडित ने ही इसकी रचना की होगी।

(3) चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री कौटिल्य यदि 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार होता तो उसके सूत्र एवं उक्तियाँ बड़े राज्यों के संबंध में होते, परन्तु 'अर्थशास्त्र' के उद्धरण एवं उक्तियाँ लघु एवं मध्यम राज्यों के लिये सम्बोधित हैं। अत: स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार कौटिल्य नहीं था। डॉ. बेनी प्रसाद के अनुसार 'अर्थशास्त्र' में जिस आकार या स्वरूप के राज्य का जिक्र किया गया है, नि:सन्देह वह मौर्य, कलिंग या आंध्र साम्राज्य के आधार से मेल नहीं खाता है।

(4) विंटरनीज ने कहा है कि मेगास्थनीज ने, जो लम्बे अरसे तक चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा और जिसने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में चन्द्रगुप्त के दरबार के संबंध में बहुत कुछ लिखा है, कौटिल्य के बारे में कुछ नहीं लिखा है और न ही उसकी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' की कहीं कोई चर्चा की है। यदि 'अर्थशास्त्र' जैसे–विख्यात शास्त्र

का लेखक कौटिल्य चन्द्रगुप्त का मंत्री होता तो मेगास्थनीज की 'इंडिका' में उसका जिक्र अवश्य किया जाता।

(5) मेगास्थनीज और कौटिल्य के कई विवरणों में मेल नहीं खाता। उदाहरण के लिए मेगास्थनीज के अनुसार उस समय भारतीय रासायनिक प्रक्रिया से अवगत नहीं थे, भारतवासियों को केवल पाँच धातुओं की जानकारी थी, जबकि 'अर्थशास्त्र' में इन सबों का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रशासकीय संरचना, उद्योग-व्यवस्था, वित्त-व्यवस्था आदि के संबंध में भी मेगास्थनीज और 'अर्थशास्त्र' का लेखक चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री कौटिल्य नहीं हो सकता है।

चाणक्य को ही 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार मानने के पीछे तर्क

पुस्तक की समाप्ति पर स्पष्ट रूप से लिखा गया है-

"प्राय: भाष्यकारों का शास्त्रों के अर्थ में परस्पर मतभेद देखकर विष्णुगुप्त ने स्वयं ही सूत्रों को लिखा और स्वयं ही उनका भाष्य भी किया।" (15/1)

साथ ही यह भी लिखा गया है–

"इस शास्त्र (अर्थशास्त्र) का प्रणयन उसने किया है, जिसने अपने क्रोध द्वारा नन्दों के राज्य को नष्ट करके शास्त्र, शस्त्र और भूमि का उद्धार किया।" (15/1)

विष्णु पुराण में इस घटना की चर्चा इस तरह की गई है–

"महापदम-नन्द नाम का एक राजा था। उसके नौ पुत्रों ने सौ वर्षों तक राज्य किया। उन नन्दों को कौटिल्य नाम के ब्राह्मण ने मार दिया। उनकी मृत्यु के बाद मौर्यों ने पृथ्वी पर राज्य किया और कौटिल्य ने स्वयं प्रथम चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक किया। चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार हुआ और बिन्दुसार का पुत्र अशोकवर्धन हुआ।" (4/24)

'नीतिसार' के कर्ता कामन्दक ने भी घटना की पुष्टि करते हुए लिखा है–

"इन्द्र के समान शक्तिशाली आचार्य विष्णुगुप्त ने अकेले ही वज्र-सदृश अपनी मन्त्र-शक्ति द्वारा पर्वत-तुल्य महाराज नन्द का नाश कर दिया और उसके स्थान पर मनुष्यों में चन्द्रमा के समान चन्द्रगुप्त को पृथ्वी के शासन पर अधिष्ठित किया।"

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि विष्णुगुप्त और कौटिल्य एक ही व्यक्ति थे। 'अर्थशास्त्र' में ही द्वितीय अधिकरण के दशम अध्याय के अन्त में पुस्तक के रचयिता का नाम 'कौटिल्य' बताया गया है–

"सब शास्त्रों का अनुशीलन करके और उनका प्रयोग भी जान करके कौटिल्य ने राजा (चन्द्रगुप्त) के लिए इस शासन-विधि (अर्थशास्त्र) का निर्माण किया है।" (2/10)

पुस्तक के आरम्भ में 'कौटिल्येन कृतं शास्त्रम्' तथा प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'इति कौटिलीये र्थशास्त्रो' लिखकर ग्रन्थकार ने अपने 'कौटिल्य नाम को अधिक विख्यात किया है। जहां-जहां अन्य आचार्यों के मत का प्रतिपादन किया है, अन्त में 'इति कौटिल्य' अर्थात् कौटिल्य का मत है-इस तरह कहकर कौटिल्य नाम के लिए अपना अधिक पक्षपात प्रदर्शित किया है।

परन्तु यह सर्वथा निर्विवाद है कि विष्णुगुप्त तथा कौटिल्य अभिन्न व्यक्ति थे। उत्तरकालीन दण्डी कवि ने इसे आचार्य विष्णुगुप्त नाम से यदि कहा है, तो बाणभट्ट ने इसे ही कौटिल्य नाम से पुकारा है। दोनों का कथन है कि इस आचार्य ने 'दण्डनीति' अथवा 'अर्थशास्त्र' की रचना की।

पंचतन्त्र में इसी आचार्य का नाम चाणक्य दिया गया है, जो अर्थशास्त्र का रचयिता है। कवि विशाखदत्त-प्रणीत सुप्रसिद्ध नाटक 'मुद्राराक्षस' में चाणक्य को कभी कौटिल्य तथा कभी विष्णुगुप्त नाम से सम्बोधित किया गया है।

'अर्थशास्त्र' की रचना 'शासन-विधि' के रूप में प्रथम मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के लिए की गई। अतः इसकी रचना का काल वही मानना उचित है, जो सम्राट चन्द्रगुप्त का काल है। पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों ने यह काल 321 ई.पू. से 296 ई.पू. तक निश्चित किया है। कई अन्य विद्वान सम्राट सेण्ड्राकोटस (जो यूनानी इतिहास में सम्राट चन्द्रगुप्त का पर्यायवाची है) के आधार पर निश्चित की हुई इस तिथि को स्वीकार नहीं करते।

अर्थशास्त्र का वर्ण्य-विषय

सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलं अर्थः। अर्थस्य मूलं राज्यं। राज्यस्य मूलं इन्द्रिय जयः। इन्द्रियाजयस्य मूलं विनयः। विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा।

सुख का मूल है, धर्म। धर्म का मूल है, अर्थ। अर्थ का मूल है, राज्य। राज्य का मूल है, इन्द्रियों पर विजय। इन्द्रियजय का मूल है, विनय। विनय का मूल है, वृद्धों की सेवा।

कौटिल्य द्वारा रचित चाणक्यसूत्र 1-6

जैसे–ऊपर कहा गया है, इसका मुख्य विषय शासन-विधि अथवा शासन-विज्ञान है– ''कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः।'' (कौटिल्य ने

राजाओं के लिये शासन विधि की रचना की है।) इन शब्दों से स्पष्ट है कि आचार्य ने इसकी रचना राजनीति-शास्त्र तथा विशेषतया शासन-प्रबन्ध की विधि के रूप में की। अर्थशास्त्र की विषय-सूची को देखने से (जहां अमात्योत्पत्ति, मन्त्रधिकार, दूत-प्रणिधि, अध्यक्ष-नियुक्ति, दण्डकर्म, षाड्गुण्यसमुद्देश्य, राजराज्ययो-व्यसन-चिन्ता, बलोपादान-काल, स्कन्धावार-निवेश, कूट-युद्ध, मन्त्र-युद्ध इत्यादि विषयों का उल्लेख है) यह सर्वथा प्रमाणित हो जाता है कि इसे आजकल कहे जाने वाले अर्थशास्त्र (इकोनोमिक्स) की पुस्तक कहना भूल है। प्रथम अधिकरण के प्रारम्भ में ही स्वयं आचार्य ने इसे 'दण्डनीति' नाम से सूचित किया है।

शुक्राचार्य ने दण्डनीति को इतनी महत्त्वपूर्ण विद्या बतलाया है कि इसमें अन्य सब विद्याओं का अन्तर्भाव मान लिया है- क्योंकि 'शस्त्रोण रक्षिते देशे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते' की उक्ति के अनुसार शस्त्र (दण्ड) द्वारा सुशासित तथा सुरक्षित देश में ही वेद आदि अन्य शास्त्रों की चिन्ता या अनुशीलन हो सकता है। अत: दण्डनीति को अन्य सब विद्याओं की आधारभूत विद्या के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है और वही दण्डनीति अर्थशास्त्र है।

जिसे आजकल अर्थशास्त्र (Economics) कहा जाता है, उसके लिए 'वार्ता' शब्द का प्रयोग किया गया है, यद्यपि यह शब्द पूर्णतया अर्थशास्त्र का द्योतक नहीं। कौटिल्य ने वार्ता के तीन अंग कहे हैं-कृषि, वाणिज्य तथा पशु-पालन, जिनसे प्राय: वृत्ति या जीविका का उपार्जन किया जाता था। मनु, याज्ञवल्क्य आदि शास्त्रकारों ने भी इन तीन अंगों वाले वार्ताशास्त्र को स्वीकार किया है। पीछे शुक्राचार्य ने इस वार्ता में कुसीद (बैंकिग) को भी वृत्ति के साधन-रूप में सम्मिलित कर दिया है। परन्तु अर्थशास्त्र को सभी शास्त्रकारों ने दण्डनीति, राजनीति अथवा शासनविज्ञान के रूप में ही वर्णित किया है। अत: 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' को राजनीति की पुस्तक समझना ही ठीक होगा न कि सम्पत्तिशास्त्र की पुस्तक। वैसे इसमें कहीं-कहीं सम्पत्तिशास्त्र के धनोत्पादन, धनोपभोग तथा धन-विनिमय, धन-विभाजन आदि विषयों की भी प्रासंगिक चर्चा की गई है।

'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के प्रथम अधिकरण का प्रारम्भिक वचन इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डालने वाला है–

पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्रणि पूर्वाचार्ये: प्रस्तावितानि प्रायश: तानि संहृत्य एकमिदमर्थशास्त्र कृतम्।

अर्थात्–प्राचीन आचार्यों ने पृथ्वी जीतने और पालन के उपाय बतलाने वाले जितने अर्थशास्त्र लिखे हैं, प्राय: उन सबका सार लेकर इस एक अर्थशास्त्र का निर्माण किया गया है।

यह उद्धरण अर्थशास्त्र के विषय को जहां स्पष्ट करता है, वहां इस सत्य को भी प्रकाशित करता है कि 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' से पूर्व अनेक आचार्यों ने अर्थशास्त्र की रचनाएं कीं, जिनका उद्देश्य पृथ्वी–विजय तथा उसके पालन के उपायों का प्रतिपादन करना था। उन आचार्यों तथा उनके सम्प्रदायों के कुछ नामों का निर्देशन 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में किया गया है, यद्यपि उनकी कृतियां आज उपलब्ध भी नहीं होतीं। ये नाम निम्नलिखित है–

(1) मानव–मनु के अनुयायी
(2) बार्हस्पत्य–बृहस्पति के अनुयायी
(3) औशनस–उशना अथवा शुक्राचार्य के मतानुयायी
(4) भारद्वाज (द्रोणाचार्य)
(5) विशालाक्ष
(6) पराशर
(7) पिशुन (नारद)
(8) कौणपदन्त (भीष्म)
(9) वाताव्याधि (उद्धव)
(10) बाहुदन्ती–पुत्र (इन्द्र)।

अर्थशास्त्र के इन दस सम्प्रदायों के आचार्यों में प्राय: सभी के सम्बन्ध में कुछ–न–कुछ ज्ञात है, परन्तु विशालाक्ष के बारे में बहुत कम परिचय प्राप्त होता है। इन नामों से यह तो अत्यन्त स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र के प्रति अनेक महान विचारकों तथा दार्शनिकों का ध्यान गया और इस विषय पर एक उज्जवल साहित्य का निर्माण हुआ। आज वह साहित्य लुप्त हो चुका है। अनेक विदेशी आक्रमणों तथा राज्यक्रान्तियों के कारण इस साहित्य का नाम–मात्र शेष रह गया है, परन्तु जितना भी साहित्य अवशिष्ट है वह एक विस्तृत अर्थशास्त्रीय परम्परा का संकेत करता है।

'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में इन पूर्वाचार्यों के विभिन्न मतों का स्थान–स्थान पर संग्रह किया गया है और उनके शासन–सम्बन्धी सिद्धान्तों का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है।

इस अर्थशास्त्र में एक ऐसी शासन-पद्धति का विधान किया गया है जिसमें राजा या शासक प्रजा का कल्याण सम्पादन करने के लिए शासन करता है। राजा स्वेच्छाचारी होकर शासन नहीं कर सकता। उसे मन्त्रिपरिषद् की सहायता प्राप्त करके ही प्रजा पर शासन करना होता है। राज्य-पुरोहित राजा पर अंकुश के समान है, जो धर्म-मार्ग से च्युत होने पर राजा का नियन्त्रण कर सकता है और उसे कर्तव्य-पालन के लिए विवश कर सकता है।

सर्वलोकहितकारी राष्ट्र का जो स्वरूप कौटिल्य को अभिप्रेत है, वह 'अर्थशास्त्र' के निम्नलिखित वचन से स्पष्ट है-

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।

नात्मप्रियं प्रियं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं प्रियम् (1/19)

अर्थात्-प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजाके हित में उसका हित है। राजा का अपना प्रिय (स्वार्थ) कुछ नहीं है, प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है।

अन्य अर्थशास्त्र

400 ई. सन् के लगभग कामन्दक ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र के आधार पर कामन्दकीय नीतिसार नामक 20 सर्गों में विभक्त काव्यरूप एक अर्थशास्त्र लिखा था। यह नैतिकता और विदेश-नीति के सिद्धान्तों पर भी विचार करता है।

सोमदेव सूरि का नीतिवाक्यामृत, हेमचन्द्र का लघु अर्थनीति, भोज का युक्तिकल्पतरु, शुक्र का शुक्रनीति आदि कुछ दूसरे सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्र हैं, जिनको नीतिशास्त्र के व्यावहारिक पक्ष की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों के अन्तर्गत भी गिना जा सकता है। चाणक्यनीतिदर्पण, नीतिश्लोकों का अव्यवस्थित संग्रह है।

5

अभिज्ञान शाकुन्तलम्

अभिज्ञान शाकुन्तलम् न केवल संस्कृत साहित्य का, अपितु विश्वसाहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। यह कालिदास की अन्तिम रचना है। इसके सात अंकों में राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय-कथा का वर्णन है। इसका कथानक महाभारत के आदि पर्व के शकुन्तलोपायान से लिया गया है। कण्व के माध्यम से एक पिता का पुत्री को दिया गया उपदेश आज 2,000 वर्षों के बाद भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना उस समय में था। भारतीय आलोचकों ने 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' कहकर इस नाटक की प्रशंसा की है। भारतीय आलोचकों के समान ही विदेशी आलोचकों ने भी इस नाटक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। जब सन् 1791 में जार्जफोस्टर ने इसका जर्मनी में अनुवाद किया, तो उसे देखकर जर्मन विद्वान् गेटे इतने गद्‌गद हुए कि उन्होंने उसकी प्रशंसा में एक कविता लिख डाली थी। अभिज्ञान शाकुन्तलम् महाकवि कालिदास का विश्वविख्यात नाटक है जिसका अनुवाद प्रायः सभी विदेशी भाषाओं में हो चुका है। इसमें राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला के प्रणय, विवाह, विरह, प्रत्याख्यान तथा पुनर्मिलन की एक सुन्दर कहानी है। पौराणिक कथा में दुष्यन्त को आकाशवाणी द्वारा बोध होता है पर इस नाटक में कवि ने मुद्रिका द्वारा इसका बोध कराया है।

इसकी नाटकीयता, इसके सुन्दर कथोपकथन, इसकी काव्य-सौन्दर्य से भरी उपमाएँ और स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हुई समयोचित सूक्तियाँ और इन सबसे बढ़कर विविध प्रसंगों की ध्वन्यात्मकता इतनी अद्‌भुत है कि इन दृष्टियों से देखने

पर संस्कृत के भी अन्य नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् से टक्कर नहीं ले सकतेय फिर अन्य भाषाओं का तो कहना ही क्या ! तो यहीं सबसे ज्यादा अच्छा है।

मौलिक न होने पर भी मौलिक

(कालिदास) ने अभिज्ञान शाकुन्तल की कथावस्तु मौलिक नहीं चुनी। यह कथा महाभारत के आदिपर्व से ली गई है। यों पद्मपुराण में भी शकुन्तला की कथा मिलती है और वह महाभारत की अपेक्षा शकुन्तला की कथा के अधिक निकट है। इस कारण विन्टरनिट्ज् की कथा पद्मपुराण से ली गई है। परन्तु विद्वानों का कथन है कि पद्मपुराण का यह भाग शकुन्तला की रचना के बाद लिखा और बाद में प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। महाभारत की कथा में दुर्वासा के शाप का उल्लेख नहीं है। महाभारत का दुष्यन्त से यदि ठीक उलटा नहीं, तो भी बहुत अधिक भिन्न है।

महाभारत की शकुन्तला भी कालिदास की भांति सलज्ज नहीं है। वह दुष्यन्त को विश्वामित्र और मेनका के सम्बन्ध के फलस्वरुप हुए अपने जन्म की कथा अपने मुंह से ही सुनाती है। महाभारत में दुष्यन्त शकुन्तला के रूप पर मुग्ध होकर शकुन्तला से गांधर्व विवाह की प्रार्थना करता है, जिस पर शकुन्तला कहती है कि में विवाह इस शर्त पर कर सकती हूं कि राजसिंहासन मेरे पुत्र को ही मिले। दुष्यन्त उस समय तो स्वीकार कर लेता है और बाद में अपनी राजधानी में लौटकर जान-बूझकर लज्जावश शकुन्तला को ग्रहण नहीं करता। कालिदास ने इस प्रकार अपरिष्कृत रूप में प्राप्त हुई कथा को अपनी कल्पना से अद्भुत रूप में निखार दिया है। दुर्वासा के शाप की कल्पना करके उन्होंने दुष्यन्त के चरित्र को ऊंचा उठाया है। कालिदास की शकुन्तला भी आभिजात्य, सौंदर्य और करुणा की मूर्ति है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने सारी कथा का निर्वाह, भावों का चित्रण इत्यादि जिस ढंग से किया है, वह मौलिक और अपूर्व है।

कथा

शकुंतला राजा दुष्यन्त की पत्नी थी जो भारत के सुप्रसिद्ध राजा भरत की माता और मेनका अप्सरा की कन्या थी। महाभारत में लिखा है कि शंकुतला का जन्म मेनका अप्सरा के गर्भ से हुआ था जो इसे वन में छोड़कर चली गई थी। वन में शंकुतों (पक्षियों) आदि ने हिंसक पशुओं से इसकी रक्षा की थी, इसी से इसका नाम शकुंतला पड़ा। वन में से इसे कण्व ऋषि उठा लाए थे और अपने आश्रम में रखकर कन्या के समान पालते थे।

एक बार राजा दुष्यन्त अपने साथ कुछ सैनिकों को लेकर शिकार खेलने निकले और घूमते-फिरते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि उस समय वहाँ उपस्थित नहीं थे, इससे युवती शकुन्तला ने ही राजा दुष्यंत का आतिथ्य सत्कार किया। उसी अवसर पर दोनों में प्रेम और फिर गंधर्व विवाह हो गया। कुछ दिनों बाद राजा दुष्यंत वहाँ से अपने राज्य को चले गए। कण्व मुनि जब लौटकर आए, तब यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि शकुंतला का विवाह दुष्यंत से हो गया। शकुंतला उस समय गर्भवती हो चुकी थी। समय पाकर उसके गर्भ से बहुत ही बलवान् और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'भरत' रखा गया। कहते हैं, 'भारत' नाम 'भरत' के नाम पर ही पड़ा।

कुछ दिनों बाद शकुंतला अपने पुत्र को लेकर दुष्यन्त के दरबार में पहुँची। परन्तु शकुन्तला को बीच में दुर्वासा ऋषि का शाप मिल चुका था। राजा ने इसे बिल्कुल नहीं पहचाना और स्पष्ट कह दिया कि न तो में तुम्हें जानता हूँ और न तुम्हें अपने यहाँ आश्रय दे सकता हूँ। परंतु इसी अवसर पर एक आकाशवाणी हुई, जिससे राजा को विदित हुआ कि यह मेरी ही पत्नी है और यह पुत्र भी मेरा ही है। उन्हें कण्व मुनि के आश्रम की सब बातें स्मरण हो आईं और उन्होंने शकुंतला को अपनी प्रधान रानी बनाकर अपने यहाँ रख लिया।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में अनेक मार्मिक प्रसंगों को उल्लेख किया गया है। एक उस समय, जब दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रथम मिलन होता है। दूसरा उस समय, जब कण्व शकुन्तला को अपने आश्रम से पतिगृह के लिए विदा करते हैं। उस समय तो स्वयं ऋषि कहते हैं कि मेरे जैसे–ऋषि को अपनी पालिता कन्या में यह मोह है तो जिनकी औरस पुत्रियां पतिगृह के लिए विदा होती हैं उस समय उनकी क्या स्थिति होती होगी।

तीसरा प्रसंग है, शकुन्तला का दुष्यन्त की सभा में उपस्थित होना और दुष्यन्त को उसको पहचानने से इनकार करना। चौथा प्रसंग है उस समय का, जब मछुआरे को प्राप्त दुष्यन्त के नाम वाली अंगूठी उसको दिखाई जाती है। और पांचवां प्रसंग मारीचि महर्षि के आश्रम में दुष्यन्त-शकुन्तला के मिलन का।

ध्वन्यात्मक संकेत

शकुन्तला में कालिदास का सबसे बड़ा चमत्कार उसके ध्वन्यात्मक संकेतों में है। इसमें कवि को विलक्षण सफलता यह मिली है कि उसने कहीं भी कोई भी वस्तु निष्प्रयोजन नहीं कही। कोई भी पात्र, कोई भी कथोप-कथन, कोई भी

घटना, कोई भी प्राकृतिक दृश्य निष्प्रयोजन नहीं है। सभी घटनाएं यह दृश्य आगे आने वाली घटनाओं का संकेत चमत्कारिक रीति से पहले ही दे देते हैं। नाटक के प्रारम्भ में ही ग्रीष्म-वर्णन करते हुए वन-वायु के पाटल की सुगंधि से मिलकर सुगंधित हो उठने और छाया में लेटते ही नींद आने लगने और दिवस का अन्त रमणीय होने के द्वारा नाटक की कथा-वस्तु की मोटे तौर पर सूचना दे दी गई है, जो क्रमशः पहले शकुन्तला और दुष्यन्त के मिलन, उसके बाद नींद-प्रभाव से शकुन्तला को भूल जाने और नाटक का अन्त सुखद होने की सूचक है। इसी प्रकार नाटक के प्रारम्भिक गीत में भ्रमरों द्वारा शिरीष के फूलों को जरा-जरा-सा चूमने से यह संकेत मिलता है कि दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन अल्पस्थायी होगा। जब राजा धनुष पर बाण चढ़ाए हरिण के पीछे दौड़े जा रहे हैं, तभी कुछ तपस्वी आकर रोकते हैं। कहते हैं-'महाराज' यह आश्रम का हरिण है, इस पर तीर न चलाना।' यहां हरिण के अतिरिक्त शकुन्तला की ओर भी संकेत है, जो हरिण के समान ही भोली-भाली और असहाय है। 'कहां तो हरिणों का अत्यन्त चंचल जीवन और कहां तुम्हारे वज्र के समान कठोर बाण।' इससे भी शकुन्तला की असहायता और सरलता तथा राजा की निष्ठुरता का मर्मस्पर्शी संकेत किया गया है। जब दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रेम कुछ और बढ़ने लगता है, तभी नेपथ्य से पुकार सुनाई पड़ती है कि 'तपस्वियो, आश्रम के प्राणियों की रक्षा के लिए तैयार हो जाओ। शिकारी राजा दुष्यन्त यहां आया हुआ है।' इसमें भी दुष्यन्त के हाथों से शकुन्तला की रक्षा की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है, परन्तु यह संकेत किसी के भी कान में सुनाई नहीं दिया, शकुन्तला को किसी ने नहीं बचाया। इससे स्थिति की करुणाजनकता और भी अधिक बढ़ जाती है।

चौथे अंक के प्रारम्भिक भाग में कण्व के शिष्य ने प्रभात का वर्णन करते हुए सुख और दुःख के निरन्तर साथ लगे रहने का तथा प्रिय के वियोग में स्त्रियों के असह्य दुःख का जो उल्लेख किया है, वह दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला का परित्याग किए जाने के लिए पहले से ही पृष्ठभूमि-सी बना देता है। पांचवें अंक में रानी हंसपदिका एक गीत गाती हैं, जिसमें राजा को उनकी मधुर-वृत्ति के लिए उलाहना दिया गया है। दुष्यन्त भी यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने हंसपदिका से एक ही बार प्रेम किया है। इससे कवि यह गम्भीर संकेत देता है कि भले ही शकुन्तला को दुष्यन्त ने दुर्वासा के शाप के कारण भूलकर छोड़ा, परन्तु एक बार प्यार करने के बाद रानियों की उपेक्षा करना उनके लिए कोई नई बात नहीं

थी। अन्य रानियां भी उसकी इस मधुकर-वृत्ति का शिकार थीं। हंसपादिका के इस गीत की पृष्ठभूमि में शकुन्तला के परित्याग की घटना और भी क्रूर और कठोर जान पड़ती है। इसी प्रकार के ध्वन्यात्मक संकेतों से कालिदास ने सातवें अंक में दुष्यन्त, शकुन्तला और उसके पुत्र के मिलने के लिए सुखद पृष्ठभूमि तैयार कर दी है। इन्द्र राजा दुष्यन्त को अपूर्व सम्मान प्रदान करते हैं। उसके बाद हेमकूट पर्वत पर प्रजापति के आश्रम में पहुँचते ही राजा को अनुभव होने लगता है कि जैसे—वह अमृत के सरोवर में स्नान कर रहे हों। इस प्रकार के संकेतों के बाद दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन और भी अधिक मनोहर हो उठता है।

काव्य-सौन्दर्य

जर्मन कवि गेटे ने अभिज्ञान शाकुन्तलं के बारे में कहा था-

''यदि तुम युवावस्था के फूल प्रौढ़ावस्था के फल और अन्य ऐसी सामग्रियां एक ही स्थान पर खोजना चाहो जिनसे आत्मा प्रभावित होता हो, तृप्त होता हो और शान्ति पाता हो, अर्थात् यदि तुम स्वर्ग और मर्त्यलोक को एक ही स्थान पर देखना चाहते हो तो मेरे मुख से सहसा एक ही नाम निकल पड़ता है-शाकुन्तलम्, महान कवि कालिदास की एक अमर रचना !''

इसी प्रकार संस्कृत के विद्वानों में यह श्लोक प्रसिद्ध है-

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रपि च चतुर्थोऽकस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्।।

इसका अर्थ है-काव्य के जितने भी प्रकार हैं उनमें नाटक विशेष सुन्दर होता है। नाटकों में भी काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से अभिज्ञान शाकुन्तलम् का नाम सबसे ऊपर है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् का नाम सबसे ऊपर है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में भी उसका चतुर्थ अंक और इस अंक में भी चार श्लोक बहुत ही रमणीय हैं।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में नाटकीयता के साथ-साथ काव्य का अंश भी यथेष्ट मात्र में है। इसमेंशृंगार मुख्य रस है, और उसके संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षों का परिपाक सुन्दर रूप में हुआ है। इसके अतिरिक्त हास्य, वीर तथा करुण रस की भी जहां-तहां अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। स्थान-स्थान पर सुन्दर और मनोहरिणी उतप्रेक्षाएं न केवल पाठक को चमत्कृत कर देती हैं, किन्तु अभीष्ट भाव की तीव्रता को बढ़ाने में ही सहायक होती हैं। सारे नाटक में कालिदास ने अपनी उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का उपयोग कहीं भी केवल

अलंकार-प्रदर्शन के लिए नहीं किया। प्रत्येक स्थान पर उनकी उपमा या उत्प्रेक्षा अर्थ की अभिव्यक्ति को रसपूर्ण बनाने में सहायक हुई है।

कालिदास अपनी उपमाओं के लिए संस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध हैं। शाकुन्तलम् में भी उनकी उपयुक्त उपमा चुनने की शक्ति भली-भांति प्रकट हुई। शकुन्तला के विषय में एक जगह राजा दुष्यन्त कहते हैं कि 'वह ऐसा फूल है, जिसे किसी ने सूंघा नहीं है, ऐसा नवपल्लव है, जिस पर किसी के नखों की खरोंच नहीं लगी, ऐसा रत्न है, जिसमें छेद नहीं किया गया और ऐसा मधु है, जिसका स्वाद किसी ने चखा नहीं है।' इन उपमाओं के द्वारा शकुन्तला के सौंदर्य की एक अनोखी झलक हमारी आंखों के सामने आ जाती है। इसी प्रकार पांचवें अंक में दुश्यन्त शकुन्तला का परित्याग करते हुए कहते हैं कि 'हे तपस्विनी, क्या तुम वैसे ही अपने कुल को कलंकित करना और मुझे पतित करना चाहती हो, जैसे–तट को तोड़कर बहने वाली नदी तट के वृक्ष को तो गिराती ही है और अपने जल को भी मलिन कर लेती है।' यहां शकुन्तला की चट को तोड़कर बहने वाली नदी से दी गई उपमा राजा के मनोभाव को व्यक्त करने में विशेष रूप से सहायक होती है। इसी प्रकार जब कण्व के शिष्य शकुन्तला को साथ लेकर दुष्यन्त के पास पहुँचते हैं तो दुष्यन्त की दृष्टि उन तपस्वियों के बीच में शकुन्तला के ऊपर जाकर पड़ती है। वहां शकुन्तला के सौंदर्य का विस्तृत न करके कवि ने उनके मुख से केवल इतना कहलवा दिया है कि 'इन तपस्वियों के बीच में वह घूंघट वाली सुन्दरी कौन है, जो पीले पत्तों के बीच में नई कोंपल के समान दिखाई पड़ रही है।' इस छोटी-सी उपमा ने पीले पत्ते और कोंपल की सदृश्यता के द्वारा शकुन्तला के सौन्दर्य का पूरा ही चित्रंकन कर दिया है। इसी प्रकार सर्वदमन को देखकर दुष्यन्त कहते हैं कि 'यह प्रतापी बालक उस अग्नि के स्फुलिंग की भांति प्रतीत होता है, जो धधकती आग बनने के लिए ईधन की राह देखता है।' इस उपमा से कालिदास ने न केवल बालक की तेजस्विता प्रकट कर दी, बल्कि यह भी स्पष्ट रूप से सूचित कर दिया है कि यह बालक बड़ा होकर महाप्रतापी चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। इस प्रकार की मनोहर उपमाओं के अनेक उदाहरण शाकुन्तल में से दिये जा सकते हैं, क्योंकि शाकुन्तल में 180 उपमाएं प्रयुक्त हुई हैं। और उनमें से सभी एक से एक बढ़कर हैं।

यह ठीक है उपमा के चुनाव में कालिदास को विशेष कुशलता प्राप्त थी और यह भी ठीक है कि उनकी-सी सुन्दर उपमाएँ अन्य कवियों की रचनाओं में दुर्लभ हैं, फिर भी कालिदास की सबसे बड़ी विशेषता उपमा-कौशल नहीं

है। उपमा-कौशल तो उनके काव्य-कौशल का एक सामान्य-सा अंग है। अपने मनोभाव को व्यक्त करने अथवा किसी रस का परिपाक करने अथवा किसी भाव की तीव्र अनुभूति को जगाने की कालिदास अनेक विधियां जानते हैं। शब्दों का प्रसंगोचित चयन, अभीष्ट भाव के उपयुक्त छंद का चुनाव और व्यंजना-शक्ति का प्रयोग करके कालिदास ने अपनी शैली को विशेष रूप से रमणीय बना दिया है।

जहां कालिदास शकुन्तला के सौन्दर्य-वर्णन पर उतरे हैं, वहां उन्होंने केवल उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं द्वारा शकुन्तला का रूप चित्रण करके ही सन्तोष नहीं कर लिया है। पहले-पहले तो उन्होंने केवल इतना कहलवाया कि 'यदि तपोवन के निवासियों में इतना रूप है, तो समझो कि वन-लताओं ने उद्यान की लताओं को मात कर दिया।' फिर दुष्यन्त के मुख से उन्होंने कहलवाया कि 'इतनी सुन्दर कन्या को आश्रम के नियम-पालन में लगाना ऐसा ही है जैसे—नील कमल की पंखुरी से बबूल का पेड़ काटना।' उसके बाद कालिदास कहते हैं कि 'शकुन्तला का रूप ऐसा मनोहर है कि भले ही उसने मोटा वल्कल वस्त्र पहना हुआ है, फिर उससे भी उसका सौंदर्य कुछ घटा नहीं, बल्कि बढ़ा ही है। क्योंकि सुन्दर व्यक्ति को जो भी कुछ पहना दिया जाए वही उसका आभूषण हो जाता है।' उसके बाद राजा शकुन्तला की सुकुमार देह की तुलना हरी-भरी फूलों से लदी लता के साथ करते हैं, जिससे उस विलक्षण सौदर्य का स्वरूप पाठक की आंखों के सामने चित्रित-सा हो उठता है। इसके बाद उस सौंदर्य की अनुभूति को चरम सीमा पर पहुँचाने के लिए कालिदास एक भ्रमर को ले आए हैं, जो शकुन्तला के मुख को एक सुन्दर खिला हुआ फूल समझकर उसका रसपान करने के लिए उसके ऊपर मंडराने लगता है। इस प्रकार कालिदास ने शकुन्तला के सौंदर्य को चित्रित करने के लिए अंलकारों का सहारा उतना नहीं लिया, जितना कि व्यंजनाशक्ति काय और यह व्यंजना-शक्ति ही काव्य की जान मानी जाती है

6

मेघदूत

मेघदूत महाकवि कालिदास की अप्रतिम रचना है। अकेली यह रचना ही उन्हें 'कविकुल गुरु' उपाधि से मण्डित करने में समर्थ है। भाषा, भावप्रवणता, रस, छन्द और चरित्र-चित्रण समस्त दृष्टियों से मेघदूत अनुपम खण्डकाव्य है। सहृदय रसिकों ने मुक्त कण्ठ से इसकी सराहना की है। समीक्षकों ने इसे न केवल संस्कृत जगत् में अपितु विश्व साहित्य में श्रेष्ठ काव्य के रूप में अंकित किया है। मेघदूत में कथानक का अभाव सा है। वस्तुतः यह प्रणयकार हृदय की अभिव्यक्ति है।

मेघदूत के दो भाग हैं -

- पूर्वमेघ एवं
- उत्तरमेघ।

विषय वस्तु

अलका नगरी के अधिपति धनराज कुबेर अपने सेवक यक्ष को कर्तव्य-प्रमाद के कारण एक वर्ष के लिए नगर-निष्कासन का शाप दे देते हैं। वह यक्ष अलका नगरी से सुदूर दक्षिण दिशा में रामगिरि के आश्रमों में निवास करने लगता है। सद्यविवाहित यक्ष जैसे-तैसे आठ माह व्यतीत कर लेता है, किंतु जब वह आषाढ़ मास के पहले दिन रामगिरि पर एक मेघखण्ड को देखता है, तो पत्नी यक्षी की स्मृति से व्याकुल हो उठता है। वह यह सोचकर कि मेघ अलकापुरी पहुँचेगा तो

प्रेयसी यक्षी की क्या दशा होगी, अधीर हो जाता है और प्रिया के जीवन की रक्षा के लिए सन्देश भेजने का निर्णय करता है। मेघ को ही सर्वोत्तम पात्र के रूप में पाकर यथोचित सत्कार के अनंतर उससे दूतकार्य के लिए निवेदन करता है। रामगिरि से विदा लेने का अनुरोध करने के पश्चात् यक्ष मेघ को रामगिरि से अलका तक का मार्ग सविस्तार बताता है। मार्ग में कौन-कौन से पर्वत पड़ेंगे जिन पर कुछ क्षण के लिए मेघ को विश्राम करना है, कौन-कौन सी नदियाँ जिनमें मेघ को थोड़ा जल ग्रहण करना है और कौन-कौन से ग्राम अथवा नगर पड़ेंगे, जहाँ बरसा कर उसे शीतलता प्रदान करना है या नगरों का अवलोकन करना है, इन सबका उल्लेख करता है। उज्जयिनी, विदिशा, दशपुर आदि नगरों, ब्रह्मावर्त, कनखल आदि तीर्थों तथा वेत्रवती, गम्भीरा आदि नदियों को पार कर मेघ हिमालय और उस पर बसी अलका नगरी तक पहुँचने की कल्पना यक्ष करता है। उत्तरमेघ में अलकानगरी, यक्ष का घर, उसकी प्रिया और प्रिया के लिए उसका सन्देश- यह विषयवस्तु है।

मेघदूत की टीकायें

डॉ. एन. पी. उन्नि ने मेघूदत पर लिखी 63 टीकाओं का विवरण दिया है। इनमें सुप्रसिद्ध टीकाकार दिनकर मिश्र, पूर्ण सरस्वती, मालतीमाधव आदि प्रबन्धों पर विश्रुत टीका लिखने वाले जगद्धर, परमेश्वर, सारोद्धारिणी का अज्ञात नामा लेखक, महिमसंघगणि, सुमतिविजय, विजयसूरिगणि, भरतल्लिक , कृष्णपति आदि की टीकायें उल्लेखनीय हैं।

टीकाकारों द्वारा मेघदूत का समीक्षण

नायक-विचार–टीकाकारों ने मेघदूत के विषय में सूक्ष्म उद्भावनाओं तथा तात्त्विक विश्लेषण के साथ कृति का गहन अनुशीलन प्रस्तुत किया है। कालिदास ने अपने इस काव्य में नायक यक्ष का कहीं भी नाम निर्दिष्ट नहीं किया और न उसकी प्रिया यक्षिणी का ही। काव्य का पहला ही पद 'कश्चित' है- 'कोई' अनाम यक्ष इसका नायक है। इस 'कश्चित' पद के पीछे निहित कवि के तात्पर्य पर अनेक टीकाकारों ने विचार किया है। टीकाकार सुमतिविजय ने तो 'कश्चित' पद के पीछे यक्ष के अपराध के प्रति भर्त्सना का भाव पाया है और प्रमाण के लिए निम्नलिखित प्राचीन पद्य उद्धत किया है-

भर्तुराज्ञां न कुर्वंति ये च विश्वासघातकाः।
तेषां नानापि न ग्राह्यं काव्यारम्भे विशेषतः।

टीकाकार कृष्णपति का भी यही मत है कि अपना स्वयं का, गुरुजन का तथा अभिशप्त व्यक्ति का नाम नहीं लिया जाना चाहिये-इस विधान का पालन करने के लिये कवि ने यक्ष का नाम नहीं लिया।

टीकाकार हरगोविन्द ने भी इसी मत को दोहराते हुए भरतमुनि की यह कारिका भी उद्धत की है, जिसका स्रोत अनुसन्धेय है-

खण्डकाव्यमुखं कुर्यात कश्चिदित्यादिभिः पदैः।
सर्गबन्धेवश्यं तु नाम कार्य सुशोभनम।

तदनुसार खण्डकाव्य में नायक का नाम निर्देश न करके 'कश्चित' आदि पदों का प्रयोग करना चाहिये। हरगोविन्द ने वैकल्पिक रूप से यह समाधान भी दिया है कि अभिशप्त या दुःखित पात्र का नामग्रहण नहीं करना चाहिये।

टीकाकार भरतमल्लिक ने 'कश्चित' पद की व्याख्या में छः मत प्रस्तुत किये हैं, जिनमें तीन मत तो उक्त टीकाकारों के ही हैं।

चौथे मत व्याख्या में छः मत प्रस्तुत किये हैं, जिनमें तीन मत तो उक्त टीकाकारों के ही हैं। चौथे मत के अनुसार अस्ति कश्चिद वाग्विशेषय विद्योत्तमा की इस उक्ति का अनुरोध ही कश्चित पद के प्रयोग का कारण है।

पाँचवें मत के अनुसार मेघदूत की कथावस्तु का प्रख्यात न होकर कल्पित होना इस सर्वनाम के प्रयोग का हेतु है।

मेघदूत के स्रोत

मेघदूत के स्रोत के विषय में इन टीकाकारों ने विशद विचार किया है। दक्षिणावर्तनाथ का कथन है कि रामायण से सीता के प्रति हनुमान के मुख से राम के द्वारा प्रेषित सन्देश को मन में रख कर उसके पात्रों का मेघदूत के पात्रों के रूप में उपस्थित करते हुए कवि कालिदास ने इस काव्य की रचना की-इल खलु कविरू सीतां प्रति हनूमता हारित सन्देश हृदयेन, समुद्वहन तत्स्थानीय नाय का द्युत्पादनेन सन्देशं करोति।

मल्लिनाथ ने दक्षिणावर्तनाथ की व्याख्या का आधार स्वीकार करते हुए रामायण की प्रेरणा मेघदूत की रचना में पृष्ठभूमि माना है। पर रामायण के पात्रों और मेघदूत के पात्रों के अध्यवसान का उन्होंने न समर्थन किया है, न विरोध, जबकि पूर्णसरस्वती ने रामायण से कालिदास को प्रेरित मानते हुए दक्षिणावर्तनाथ

की इस मान्यता का कड़ा विरोध किया है कि यक्ष-यक्षिणी-वृत्तांत में राम-सीता-वृत्तांत की समाधि है। उनका तर्क है कि यदि मेघदूत में सीता-राघववृत्त का अध्यवसान होता तो कवि उसका उपमान के रूप में या अन्यथा पृथक् उल्लेख क्यों करता?

पर इसके साथ ही पूर्णसरस्वती ने कालिदास को 'रामायण रसायन परायण महाकवि' कह कर उनके कई पद्यों में रामायण की छाया निदर्शित की है। पूर्णसरस्वती ने मेघदूत पर महाभारत का भी प्रभाव माना है। स्थूणाकर्ण नामक यक्ष को कुबेर द्वारा शाप दिये जाने की महाभारतोक्त कथा को उन्होंने विस्तार से साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार नलकूबर और मणिग्रीव नामक यक्षों के शापग्रस्त होने का वृत्तांत भी मेघदूत की रचना में प्रेरक हो सकता है।

तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेघदूत की रचना प्रक्रिया में आदि कवि वाल्मीकि की सर्वातिशायी प्रतिभा और सीताराघव वृत्तांत तथा हनुमत्सन्देश प्रकरण की प्रेरणा आद्यंत बनी रही है। दक्षिणावर्तनाथ तथा पूर्णसरस्वती आदि टीकाकरों ने तो अनुसन्धानपूर्वक रामायण के ऐसे अनेक स्थल मेघदूत के पद्य की व्याख्या में उद्धत किये हैं, जिनका अप्रस्तुत विधान, कल्पना या भाव लेकर कवि ने अन्यच्छाया योनि काव्य का अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत में प्रस्तुत किया है। मेघदूत की यक्षिणी के लिये कवि ने उपमा उत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत में प्रस्तुत किया है। मेघदूत की यक्षिणी के लिए कवि ने उपमा दी है-यक्ष को लगता है कि उसकी प्रिया शिशिर में मुरझाई पद्मिनी जैसी हो गयी होगी।

पूर्णसरस्वती के अनुसार यह उत्प्रेक्षा रामायण में सीतावर्णन के निम्नलिखित पद्य पर आधारित है-

हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना।
सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशा प्रपन्ना।

इसी प्रकार यक्षिणी के वर्णन में कवि ने प्रेम की अनन्यनिष्ठ भावोत्तानता की जो कारुणिक छवि अंकित की है, उसका भी आधार रामायण में हनुमान के द्वारा सीता के दर्शन के समय की गयी इस अभिव्यक्ति में पूर्णसरस्वती ने पाया है-

नैषा पश्यति राक्षस्यों नेमान पुष्फलद्रुमान।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति।
नैव दंशांश्च मशकान न कीटान न सरीसृपान
राघवापनयेद गात्रत त्वदगतेनांतरात्मना।

इसी प्रकार यक्ष जब कहता है- हे मेघ तुम्हारी सखी यक्षिणी का मन मेरे लिये स्नेह से लबालब भरा है, तो पूर्णसरस्वती इसमें सीता की प्रेममयता प्रतिबिम्बित पाते हैं-

'अन्योन्या राघवेणाहं भास्कर प्रभा यथा।'

इसी प्रकार दक्षिणावर्तनाथ तथा पूर्णसरस्वती ने मेघदूत के अनेक पद्यों में रामायण से भावसाम्य तथा रामायण की प्रेरणा का दिग्दर्शन कराया है। उदाहरणार्थ-

त्वफ्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलय श्रीतुलामेष्यतीति।

मछली के उछलने से हिलते नीलकमल का नेत्र के लिए यह उपमान वाल्मीकि ने विरह-विधुरा सीता के लिए सदृश प्रसंग में प्रयुक्त किया- 'प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवातिताम्रम।

अगले छन्द में कालिदास ने यक्ष के मुख से पुनः उत्प्रेक्षा करायी है-

यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम।'

यहाँ भी वाल्मीकि की इस अभिव्यक्ति की छाया इन टीकाकारों ने देखी है-

'प्रस्पन्दमानः पुनरुरस्था रामः पुरस्तात स्थितमाचचक्षे।'

वस्तुतःदूतकाव्य की परम्परा का मूल वैदिक संहिताओं में है, जिस पर 'सन्देशकाव्य विषयक अध्याय में विचार किया गया है।

कथा की पृष्ठभूमि

मेघदूत में महाकाव्य-खण्डकाव्यादि के समान कथा कहना कवि का लक्ष्य नहीं है। कथा का संकेत पहले पद्य में बहुत सूक्ष्म रूप से करके वह यक्ष की मनोदशाओं की गहन मीमांसा तथा तज्जन्य रससिद्धि में तल्लीन हो जाता है। कुछ टीकाकारों ने योगवासिष्ठ में एक पक्ष के शापग्रस्त होने की कथा को मेघदूत के कथानक की इस भूमिका का आधार माना जाता है। तो जैन टीकाकारों ने अलग-अलग रूप में इस कथा का प्रतिपादन किया है। एक कथा में कुबेर को पूजा के लिए सद्योविकसित कमलपुष्प देने के स्थान पर एक दिन पूर्व तोड़े गये बासी पुष्प देने पर यक्ष शापग्रस्त होता है। अन्य कथा में कुबेर के उद्यान का द्वार असावधानी से खुला छोड़ देने पर ऐरावत के द्वारा घुस कर उद्यान तहस-नहस कर दिये जाने के कारण। अन्य कथा में कुबेर के लिए यक्ष ने जो पुष्पशय्या

बनायी थी, उस पर स्वयं सो जाने के अपराध के कारण उसे दण्ड विधान दिलाया गया है। एक अन्य कथा में वह पूजा के लिये निर्मित माला पहले अपनी प्रिया को पहना देता है। वस्तुतः मेघदूत में यक्ष की भावाकुलता और यक्ष-यक्षिणी के प्रगाढ़ अनुराग के चित्रण के आधार पर टीकाकारों ने अपने-अपने ढंग से इस प्रकार की कथाओं की कल्पना कर डाली है।

बौद्ध साहित्य में मेघदूत का कथा-स्रोत

कतिपय आधुनिक विद्वानों ने मेघदूत की कथाभूमि का आधार प्राचीन बौद्ध वांगमय में माना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि त्रिपिटक साहित्य में कुछ ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनमें दौत्य तथा प्रणायिनी के प्रति करुण सन्देश का निरुपण है। कालिदास के लिए ये प्रसंग प्रेरक थे अथवा नहीं यह विचारणीय है। दीघनिकाय के सक्कपन्हसुत्त में सक्क नामक व्यक्ति बुद्ध के पास स्वयं न जाकर पंचशिख नामक गन्धर्व के द्वारा सन्देश भेजना है, और पंचशिख सन्देश में जो प्रस्तुत करता है, उनका विषयश्रृंगार तथा प्रेम है और भावधारा मेघदूत के सदृश है। बौद्धों की मान्यता है किश्रृंगारित होते हुए भी इन गाथाओं में दार्शनिक अर्थ अंतर्निहित है। किंतु इन गाथाओं में पंचशिख तथा मद्दा सूरियवच्चसा के प्रणयानुराग का उद्घात भी हुआ है और पंचशिख के कथनों में यक्ष की अभिव्यक्ति से साम्य भी है।

रायज डेविडस तथा चाइल्डर्स की यह भी मान्यता है कि कालिदास को अलकानगरी की परिकल्पना बौद्ध साहित्य में महापरिनिब्बानसुत्त में वर्णित देवों की राजधानी अलकनन्दा से मिली है।

मेघदूत की आत्मकथात्मकता

कतिपय टीकाकारों ने मेघदूत में स्वयं कवि के द्वारा अपने स्वयं के सम्बन्ध में परोक्ष रूप से संकेत या सन्दर्भ दिये जाने की सम्भावना पर भी विचार किया है। अनुश्रुति है कि कालिदास ने विक्रमादित्य राजा की भगिनी और अपनी प्रणयिनी के विरह में यह काव्य लिखा था तथा इसके नायक वे स्वयं हैं।

चौदहवीं शताब्दी में केरल में मणिप्रवालम शैली में लिखित काकदूत नामक काव्य में कहा गया है-

स्वस्त्रो पूर्व महितनृपतेर्विक्रमादित्यनाम्न।
पोक्कांचक्रे तरुणजलदं कालिदासः कवीन्द्रः।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी राजा विक्रमादित्य द्वारा कालिदास को प्रवरसेन के पास भेजे जाने तथा कवि द्वारा इस प्रवासावधि में 'कुंतलेश्वरदौत्य' की रचना करने का संकेत दिया है।

ऐसी स्थिति में टीकाकारों का मेघदूत के विविध वर्णनों तथा उल्लेखों में कवि के आत्मानुभव की छाया खोजने का प्रयास करना स्वाभाविक ही है। मेघदूत के पद्य में 'निचुल' तथा 'दिङ्नाग' इन दो शब्दों के प्रयोग के आधार पर टीकाकारों का अनुमान है कि कवि कालिदास ने यहाँ अपने समय के निचुल कवि तथा दिङ्नाग नामक पण्डित का उल्लेख किया है। दक्षिणावर्तनाथ का कथन है कि निचुल कवि कालिदास के मित्र थे, यहाँ तक कि निचुल कवि का बनाया एक पद्य भी दक्षिणावर्तनाथ ने उद्धत किया है। दिङ्नाग पण्डित अपने 'स्थूलहस्तावलेप' के साथ कालिदास की कटु आलोचना करते थे। कवि ने इस पद में उन पर कटाक्ष किया है।

दक्षिणावर्तनाथ का अनुगमन करते हुए मल्लिनाथ ने भी इस किंवदंती को मान्यता दी है।

रससृष्टि

मेघदूत विप्रलम्भशृंगार का संस्कृत साहित्य में साहित्य में सर्वोत्कृष्ट काव्य कहा जा सकता है। विरह वेदना की तीव्रता, प्रेम की अनन्यता तथा भावैकतानता का ऐसा अनूठा चित्रण, वह भी गम्भीर जीवनदृष्टि तथा सांस्कृतिक मूल्यबोध के साथ, अन्यत्र नहीं मिलता। कवि ने अपना काव्य उस यक्ष की उस मनोदशा के चित्रण के साथ आरम्भ किया है, जब रामगिरि पर अभिशप्त जीवन व्यतीत करते-करते उसने किसी तरह आठ महीने तो बिता दिये हैं। मिलन का समय निकट आता जा रहा है, उसकी प्रिया के लिये चिंता और उससे मिलने की आतुरता बढ़ती जा रही है। यक्ष बावला और अर्धविक्षिप्त-सा हो गया है। ऐसे में वह स्वप्न, कल्पना और अभिव्यक्ति के द्वारा अपने आप को जिलाये रखना चाहता है। उत्कृट जिजीविषा, भावसान्द्रता और मनुष्य के कल्पनालोक की रम्यता का बेजोड़ समवाय मेघदूत में हम अनुभव करते हैं। हृदय की सुकुमारता और प्रेम के प्रसार का भी बोध मेघदूत देता है, वह भारतीय साहित्य में सुदुर्लभ है। यक्ष का चित्त कामातुर है, पर प्रेम और विरह की आंच उसके कलुष को धोती चली गयी है। इस प्रकार मेघदूत की रससृष्टि में मनोविज्ञान और चित्त के संस्कार की प्रक्रिया को कविप्रतिभा ने बड़ी कुशलता से मेघदूत में पिरो दिया है।

छन्दोविधान तथा भाषाशैली

मेघदूत में आद्यंत केवल 'मन्दाक्रांता' छंद का ही प्रयोग है। इस छन्द की विशिष्ट लय तथा यति से यह समग्र काव्य वेदना, उच्छ्वास-निःश्वास तथा मेघ की द्रुतविलम्बित गति का अनुभव देता है। वस्तुतः कालिदास के द्वारा इस छन्द के इतने सटीक प्रयोग के कारण ही आचार्य-परम्परा में यह मान्यता स्थापित हुई कि वर्षा, प्रवास तथा व्यसन के वर्णन के लिये 'मन्दाक्रांता छन्द' विशेष उपयुक्त है। क्षेमेन्द्र कालिदास के मन्दाक्रांता-प्रयोग की सराहना करते हुए कहते हैं -

प्रावृटप्रवास-व्यसने मन्दाक्रांता विराजते।

इस छन्द की विशिष्ट संरचना गति, लय, त्वरा और मंथरता का एक साथ बोध कराती है और कालिदास ने तदनुरूप की सारे काव्य में भाषा और पदावली का भी अनुकूल प्रयोग किया है, जिसमें यक्ष के अंतर्जगत तथा बाह्य जगत् उसके मन की आतुरता और गम्भीरता, व्यथा और विवेक तथा मेघ को शीध्र भेजने और त्वरिक गति के लिए उसका निर्देश, फिर भी सारे देश में प्रत्येक सुरम्य या पवित्र स्थल पर अटक-अटक कर उसे आगे ले जाने की चाह-इन सबका पर्यावरण इस विशिष्ट भाषा-शैली के द्वारा रचता चला गया है। त्वरा और मंथरता दोनों का भाव समेकित करती हुई शब्दावली भी सजल होकर कवि ने यहाँ गूंथी है-जो लघुगतिः, गंतुमाशु व्यस्येत, वाहयेद/वशेषम-मन्दायंते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः, उत्पतोदङ्मुखः खम-आदि में पदावली की गत्यात्मकता और त्वरा की अभिव्यक्ति तथा 'खिन्नः खिन्न शिखरिषु पदं न्यस्य गंतासि यत्र, क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः श्रोतसां चोपभुज्य, स्थित्वा तस्मिन वनचरवधूमुक्तकुंजे मुहूर्तम, कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते नीचौराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेताः, स्थातव्य ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः, नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात खिन्नविद्युत्कलत्रः, प्रस्थान ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि, नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम-ठहर-ठहर कर अटक-अटक कर आगे बढ़ने का भाव प्रकट करती चलती है। वस्तुतः मेघदूत छन्दोविधान और भाषा-शैली की दृष्टि से संस्कृत साहित्य की अनुपम निधि है।

7

रघुवंशम्

रघुवंश कालिदास की सर्वाधिक प्रौढ़ काव्यकृति है। 'कुमारसम्भव' की तुलना में इसका फलक विस्तीर्णतर है। अनेक चरित्रों और नाना घटना प्रसंगों की वज्रसमुत्कीर्ण मणियों को कवि ने इसमें एक सूत्र में पिरो दिया है और उनके माध्यम से राष्ट्र की गौरवशाली परम्पराओं, आस्थाओं और संस्कृति की महतनीय उपलब्धियों की तथा समसामयिक सामंतीय समाज के अधः पतन की महागाथा उज्ज्वल पदावली में प्रस्तुत कर दी है। दिलीप और रघु जैसे–उदात्त चरित्रों के आख्यान से आरम्भ कर राम के चरित्र को भी रघुवंश प्रस्तुत करता है और 'अग्निवर्ण' जैसे–विलासी राजा को भी।

रघुवंश कालिदास द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य है। इस महाकाव्य में उन्नीस सर्गों में रघु के कुल में उत्पन्न 29 राजाओं का इक्कीस प्रकार के छन्दों का प्रयोग करते हुए वर्णन किया गया है। इसमें दिलीप, रघु, दशरथ, राम, कुश और अतिथि का विशेष वर्णन किया गया है। वे सभी समाज में आदर्श स्थापित करने में सफल हुए। राम का इसमें विशद वर्णन किया गया है। उन्नीस में से छः सर्ग उनसे ही संबन्धित हैं।

आदिकवि वाल्मीकि ने राम को नायक बनाकर अपनी रामायण रची, जिसका अनुसरण विश्व के कई कवियों और लेखकों ने अपनी-अपनी भाषा में किया और राम की कथा को अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया। कालिदास ने यद्यपि राम की कथा रची परन्तु इस कथा में उन्होंने किसी एक पात्र को नायक

के रूप में नहीं उभारा। उन्होंने अपनी कृति 'रघुवंश' में पूरे वंश की कथा रची, जो दिलीप से आरम्भ होती है और अग्निवर्ण पर समाप्त होती है। अग्निवर्ण के मरणोपरान्त उसकी गर्भवती पत्नी के राज्यभिषेक के उपरान्त इस महाकाव्य की इतिश्री होती है।

रघुवंश पर सबसे प्राचीन उपलब्ध टीका 10वीं शताब्दी के काश्मीरी कवि वल्लभदेव की है। किन्तु सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका मल्लिनाथ (1350 ई-1450 ई) द्वारा रचित 'संजीवनी' है।

परिचय

रघुवंश की कथा को कालिदास ने 19 सर्गों में बाँटा है जिनमें राजा दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, लव, कुश, अतिथि तथा बाद के 29 रघुवंशी राजाओं की कथा गूँथी गई है। इस वंश का पतन उसके अन्तिम राजा अग्निवर्ण के विलासिता की अति के कारण होता है और यहीं इस कृति की इति भी होती है।

इक्कीस सर्गों में वर्णित रघुवंशी राजाओं की नामावली क्रमानुसार निम्नलिखित है- यथा-

- दिलीप
- रघु
- अज
- दशरथ
- राम
- कुश
- अतिथि
- निषध
- नल
- नभ
- पुण्डरीक
- क्षेमधन्वा
- देवानीक
- अहीनगु
- पारिपात्र

- शिल
- उन्नाभ
- वज्रनाभ
- शंखण
- व्युषिताश्व
- विश्वसह
- हिरण्यनाभ
- कौसल्य
- ब्रह्मिष्ठ
- पुत्र
- पुष्य
- धृवसन्धि
- सुदर्शन
- अग्निवर्ण

रघुवंश काव्य में कालिदास ने रघुवंशी राजाओं को निमित्त बनाकर उदारचरित पुरुषों का स्वभाव पाठकों के सम्मुख रखा है। इस कथा के माध्यम से कवि ने राजा के चरित्र, आदर्श तथा राजधर्म जैसे–विषयों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। भारत के इतिहास में सूर्यवंश के इस अध्याय का वह अंश भी है जिसमें एक ओर यह संदेश है कि राजधर्म का निर्वाह करनेवाले राजा की कीर्ति और यश देश भर में फैलती है, तो दूसरी ओर चरित्रहीन राजा के कारण अपयश व वंश–पतन निश्चित है, भले ही वह किसी भी उच्च वंश का वंशज ही क्यों न रहा हो!

इस महाकाव्य के आरम्भ में महाकवि ने रघुकुल के राजाओं का महत्त्व एवं उनकी योग्यता का वर्णन करने के बहाने प्राणिमात्र के लिए कितने ही प्रकार के रमणीय उपदेश दिये हैं। रघुवंशी राजाओं का संक्षेप में वर्णन जानना हो तो रघुवंश के केवल एक श्लोक में उसकी परिणति इस प्रकार है–

त्यागाय समृतार्थानां सत्याय मिभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनानन्ते तनुत्यजाम्।

(सत्पात्र को दान देने के लिए धन इकट्ठा करनेवाले, सत्य के लिए मितभाषी, यश के लिए विजय चाहनेवाले, और सन्तान के लिए विवाह करनेवाले, बाल्यकाल में विद्याध्ययन करने वाले, यौवन में सांसारिक भोग भोगने वाले, बुढ़ापे में मुनियों के समान रहने वाले और अन्त में योग के द्वारा शरीर का त्याग करने वाले (राजाओं का वर्णन करता हूँ।)

समालोचकों ने कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'रघुवंश' को माना है। आदि से अन्त तक इसमें निपुण कवि का विलक्षण कौशल व्यक्त होता है। दिलीप और सुदक्षिणा के तपोमय जीवन से प्रारम्भ इस काव्य में क्रमशः रघुवंशी राजाओं की दान्यता, वीरता, त्याग और तप की एक के बाद एक कहानी उद्घाटित होती है और काव्य की समाप्ति कामुक अग्निवर्ण की विलासिता और उनके अवसान से होती है। दिलीप और सुदक्षिणा का तप-पूत आचरण, वरतन्तु के शिष्य कौत्स और रघु का संवाद, इन्दुमती स्वयंवर, अज का विलाप, राम और सीता की विमानयात्रा, निर्वासित सीता की तेजस्विता, संगमवर्णन, अयोध्या नगरी की शून्यता आदि का चित्र एक के बाद एक उभरता जाता है और पाठक विमुग्ध बना हुआ मनोयोग से उनको देखता जाता है। अनेक कथानकों का एकत्रीकरण होने पर भी इस महाकाव्य में कवि ने उनका एक-दूसरे से एक प्रकार समन्वय कर दिया है जिससे उनमें स्वाभाविक प्रवाह का संचार हो गया है। 'रघुवंश' के अनेक नृपतियों की इस ज्योतित नक्षत्रमाला में कवि ने आदिकवि वाल्मीकि के महिमाशाली राम को तेजस्विता और गरिमा प्रदान की है। वर्णनों की सजीवता, आगत प्रसर्गों की स्वाभाविकता, शैली का माधुर्य तथा भाव और भाषा की दृष्टि से 'रघुवंश' संस्कृत महाकाव्यों में अनुपम है।

रघुवंश महाकाव्य की शैली क्लिष्ट अथवा कृत्रिम नहीं, सरल और प्रसादगुणमयी है। अलंकारों का सुरुचिपूर्ण प्रयोग स्वाभाविक एवं सहज सुन्दर है। चुने हुए कुछ शब्दों में वर्ण्य विषय की सुन्दर झाँकी दिखाने के साथ कवि ने 'रघुवंश' के तेरहवें सर्ग में इष्ट वस्तु के सौंदर्य की पराकाष्ठा दिखलाने की अद्भुत युक्ति का आश्रय लिया है। गंगा और यमुना के संगम की, उनके मिश्रित जल के प्रवाह की छटा का वर्णन करते समय एक के बाद एक उपमाओं की शृंखला उपस्थित करते हुए अन्त में कवि ने शिव के शरीर के साथ-साथ उसकी शोभा की उपमा दी है और इस प्रकार सौन्दर्य को सीमा से निकालकर अनन्त के हाथों सौंप दिया-

हे निर्दोष अंगोंवाली सीते ! यमुना की तरंगों से मिले हुए गंगा के इस प्रवाह को जरा देखो तो सही, जो कहीं कृष्ण सर्पों से अलंकृत और कहीं भस्मांगराग से मंडित भगवान शिव के शरीर के समान सुंदर प्रतीत हो रहा है।

कालिदास मुख्यत: कोमल और रमणीय भावों के अभिव्यंजक कवि हैं। इसीलिए प्रकृति का कोमल, मनोरम और मधुर पक्ष उनकी इस कृति में भी अंकित हुआ है।

रघुवंश की कथा

'रघुवंश' की कथा दिलीप और उनकी पत्नी सुदक्षिणा के ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में प्रवेश से प्रारम्भ होती है। राजा दिलीप धनवान, गुणवान, बुद्धिमान और बलवान हैं, साथ ही धर्मपरायण भी। वे हर प्रकार से सम्पन्न हैं, परन्तु कमी है तो संतान की। संतान प्राप्ति का आशीर्वाद पाने के लिए दिलीप को गोमाता नंदिनी की सेवा करने के लिए कहा जाता है। रोज की तरह नंदिनी जंगल में विचर रही है और दिलीप भी उसकी रखवाली के लिए साथ चलते हैं। इतने में एक सिंह नंदिनी को अपना भोजन बनाना चाहता है। दिलीप अपने आप को अर्पित कर सिंह से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें वह अपना आहार बनाये। सिंह प्रार्थना स्वीकार कर लेता है और उन्हें मारने के लिए झपटता है। इस छलांग के साथ ही सिंह ओझल हो जाता है। तब नन्दिनी बताती है कि उसी ने दिलीप की परीक्षा लेने के लिए यह मायाजाल रचा था। नंदिनी दिलीप की सेवा से प्रसन्न होकर पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देती है। राजा दिलीप और सुदक्षिणा नंदिनी का दूध ग्रहण करते हैं और उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। इस गुणवान पुत्र का नाम रघु रखा जाता है जिसके पराक्रम के कारण ही इस वंश को रघुवंश के नाम से जाना जाता है।

रघु के पराक्रम का वर्णन कालिदास ने विस्तारपूर्वक अपने ग्रन्थ 'रघुवंश' में किया है। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को चुराने पर उन्होंने इन्द्र से युद्ध किया और उसे छुड़ाकर लाया था। उन्होंने विश्वजीत यज्ञ सम्पन्न करके अपना सारा धन दान कर दिया था। जब उनके पास कुछ भी धन नहीं रहा, तो एक दिन ऋषिपुत्र कौत्स ने आकर उनसे 14 करोड़ स्वर्ण मुद्राएं मांगी ताकि वे अपनी गुरु दक्षिणा दे सकें। रघु ने इस ब्राह्मण को संतुष्ट करने के लिए कुबेर पर चढ़ाई करने का मन बनाया। यह सूचना पाकर कुबेर घबराया और खुद ही उनका कोष भर दिया।

रघु ने सारा कोष ब्राह्मण के हवाले कर दिया, परन्तु उस ब्राह्मणपुत्र ने केवल 14 करोड़ मुद्राएं ही स्वीकारीं।

रघु के पुत्र अज भी बड़े पराक्रमी हुए। उन्होंने विदर्भ की राजकुमारी इन्दुमति के स्वयंवर में जाकर उन्हें अपनी पत्नी बनाया। कालिदास ने इस स्वयंवर का सुंदर वर्णन 'रघुवंश' में किया है। रघु ने अज का राज-कौशल देखकर अपना सिंहासन उन्हें सौंप दिया और वानप्रस्थ ले लिया। रघु की तरह अज भी एक कुशल राजा बने। वे अपनी पत्नी इन्दुमति से बहुत प्रेम करते थे। एक बार नारदजी प्रसन्नचित्त अपनी वीणा लिए आकाश में विचर रहे थे। संयोगवश उनकी वीणा का एक फूल टूटा और बगीचे में सैर कर रही रानी इंदुमति के सिर पर गिरा जिससे उनकी मृत्यु हो गई। राजा अज इंदुमति के वियोग में विह्वल हो गए और अन्त में जल-समाधि ले ली।

कालिदास ने 'रघुवंश' के आठ सर्गों में दिलीप, रघु और अज की जीवनी पर प्रकाश डाला। बाद में उन्होंने दशरथ, राम, लव और कुश की कथा का वर्णन आठ सर्गों में किया। जब राम लंका से लौट रहे थे, तब पुष्पक विमान में बैठी सीता को दण्डकारण्य तथा पंचवटी के उन स्थानों को दिखा रहे थे जहाँ उन्होंने सीता की खोज की थी। इसका बड़ा ही सुन्दर एवं मार्मिक दृष्टान्त कालिदास ने 'रघुवंश' के तेरहवें सर्ग में किया है। इस सर्ग से पता चलता है कि कालिदास की भौगोलिक जानकारी कितनी गहन थी।

अयोध्या की पूर्व ख्याति और वर्तमान स्थिति का वर्णन कुश के स्वप्न के माध्यम से कवि ने बड़ी कुशलता से सोलहवें सर्ग में किया है। अन्तिम सर्ग में रघुवंश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण के भोग-विलास का चित्रण किया गया है। राजा के दम्भ की पराकाष्ठा यह है कि प्रजा जब राजा के दर्शन के लिए आती है तो अग्निवर्ण अपने पैर खिड़की के बाहर पसार देता है। जनता के अनादर का परिणाम राज्य का पतन होता है और इस प्रकार एक प्रतापी वंश की इति भी हो जाती है।

रामायण और रघुवंश

कालिदास जानते थे कि राम की कथा का उत्कर्ष वाल्मिकि के रामायण से हो गया था और उसके बाद जो भी लिखा जाएगा उसका जूठन ही होगा। इसीलिए उन्होंने अपने काव्य में राम को नायक बनाने की बजाय रघुवंश को ही कथानायक के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें सभी पात्रों की अपनी-अपनी

भूमिका रही- अपने-अपने चरित्र के आधार पर....कुछ उत्कर्ष तो कुछ घटिया। रघुवंश का नाम उनके पराक्रमी और आदर्श राजाओं के नाम से ही चलता रहेगा।

रघुवंश में प्रयुक्त छन्द

इस महाकाव्य में 21 प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है–

अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, औपच्छन्दसिक, तोटक, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मंजुभाषिणी, मत्तमयूर, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, रथोद्धता, वांशस्थ, वसन्ततिलका, वैतालीय, शार्दूलविकृडित, शालिनी, स्वागता, हरिणी।

रघुवंश की राजपरम्परा

रघुवंश नाम पड़ने के पहले इस वंश का नाम 'इक्ष्वाकु वंश' था। वाल्मीकि रामायण में राम को 'इक्ष्वाकुवंशप्रभवो' (इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न) कहा गया है।

1. मनु
2. इक्ष्वाकु
3. शशाद
4. ककुत्स्थ
5. अनेनस
6. पृथु
7. विश्वगाश्व आर्द्र
8. युवनाश्च
9. श्रावस्त
10. वृहदश्व
11. कुवलयाश्व
12. दृढ़ाश्व
13. प्रमोद
14. हर्यश्रव
15. निकुम्भ
16. संहताश्व
17. कृशाश्व
18. प्रसेनजित
19. युवनाश्च

20. मान्धातु
21. पुरुकुत्स
22. त्रसदस्यु
23. सम्भूत
24. अनरण्य
25. पृषदश्व
26. हर्यश्रव
27. वसुमनस
28. तृधन्वन
29. त्रैयारुण
30. त्रिशंकु
31. हरिश्चन्द्र
32. रोहित
33. हरित
34. चंचु
35. विजय
36. रुरुक
37. वृक
38. बाहु
39. सगर
40. असमञ्जस
41. अंशुमन
42. दिलीप
43. भगीरथ
44. श्रुत
45. नाभाग
46. अम्बरीष
47. सिंधुदीप
48. अयतायुस
49. ऋतुपर्ण
50. सर्वकाम

51. सुदास
52. कल्माषपाद
53. अश्मक
54. मूलक
55. शतरथ
56. वृद्धशर्मन
57. विश्वसह
58. दिलीप (द्वितीय)
59. दीर्घबाहु
60. रघु
61. अज
62. दशरथ
63. रामचन्द्र

8

नाट्य शास्त्र

नाट्यशास्त्र नाट्य कला पर व्यापक ग्रंथ एवं टीका, जिसमें शास्त्रीय संस्कृत रंगमंच के सभी पहलुओं का वर्णन है। माना जाता है कि इसे तीसरी शताब्दी से पहले भरत मुनि ने लिखा था।

इसके कई अध्यायों में नृत्य, संगीत, कविता एवं सामान्य सौंदर्यशास्त्र सहित नाटक की सभी भारतीय अवधारणाओं में समाहित हर प्रकार की कला पर विस्तार से विचार-विमर्श किया गया है। इसका बुनियादी महत्व भारतीय नाटक को जीवन के चार लक्ष्यों, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के प्रति जागरूक बनाने के माध्यम के रूप में इसका औचित्य सिद्ध करना है।

नाटकों के संबंध में शास्त्रीय जानकारी को नाट्यशास्त्र कहते हैं। इस जानकारी का सबसे पुराना ग्रंथ भी नाट्यशास्त्र के नाम से जाना जाता है जिसके रचयिता भरत मुनि थे। भरत मुनि का जीवनकाल 400 ईसापूर्व से 100 ई के मध्य किसी समय माना जाता है।

संगीत, नाटक और अभिनय के सम्पूर्ण ग्रंथ के रूप में भारतमुनि के नाट्य शास्त्र का आज भी बहुत सम्मान है। उनका मानना है कि नाट्य शास्त्र में केवल नाट्य रचना के नियमों का आकलन नहीं होता बल्कि अभिनेता, रंगमंच और प्रेक्षक इन तीनों तत्त्वों की पूर्ति के साधनों का विवेचन होता है। 37 अध्यायों में भरतमुनि ने रंगमंच, अभिनेता, अभिनय, नृत्यगीतवाद्य, दर्शक, दशरूपक और रस निष्पत्ति से सम्बन्धित सभी तथ्यों का विवेचन किया है। भरत के नाट्य शास्त्र

के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटक की सफलता केवल लेखक की प्रतिभा पर आधारित नहीं होती बल्कि विभिन्न कलाओं और कलाकारों के सम्यक के सहयोग से ही होती है।

परिचय

भरतनाट्यम आदि भारतीय शास्त्रीय नृत्य, नाट्यशास्त्र से प्रेरित हैं।

नाट्य और नृत्त, दृश्य काव्य के ये दो भेद हैं। नट-नटी द्वारा किसी अवस्थाविशेष की अनुकृति नाट्य है-'नाट्यते अभिनयत्वेन रूप्यते- इति नाट्यम्'। ताल और लय की संगति से अनुबद्ध अनुकृत को नृतय कहते हैं। ये दोनों ही अभिनय के विषय हैं और ललित कला के अंतर्गत माने जाते हैं। नाट्य के प्रमुख अंग चार हैं-वाचिक, सात्विक, आंगिक और आहार्य। उक्ति-प्रत्युक्ति की यथावत् अनुकृति वाचिक अभिनय का विषय है। भावों का यथावत् प्रदर्शन सात्विक अभिनय है।

भावप्रदर्शन के लिए हाथ, पैर, नेत्र, भ्रू, एवं कटि, मुख, मस्तक आदि अंगों की विविध चेष्टाओं की अनुकृति आंगिक अभिनय है। देशविदेश के अनुरूप वेशभूषा, चालढाल, रहन सहन और बोली की अनुकृति आहार्य अभिनय का विषय है। चतुर्विध अभिनय के सहायक नृत्य, गीत, वाद्य एवं गति, वृत्ति, प्रवृत्ति और आसन का अनुसंधान भी नाट्य के अंतर्गत है। इस प्रकार अभिनय के विविध अंग एवं उपांगों के स्वरूप और प्रयोग के आकार-प्रकार का विवरण प्रस्तुत कर तत्संबंधी नियम तथा व्यवहार को निर्धारित करनेवाला शास्त्र 'नाट्यशास्त्र' है। अभिनय के अनुरूप स्थान को नाट्यगृह कहते हैं, जिसके प्रकार, निर्माण एवं साजसज्जा के नियमों का प्रतिपादन भी नाट्यशास्त्र का ही विषय है। विविध श्रेणी के अभिनेता एवं अभिनेत्री के व्यवहार, परस्पर संलाप और अभिनय के निर्देशन एवं निर्देशक के कर्तव्यों का विवरण भी नाट्यशास्त्र की व्यापक परिधि में समाविष्ट है। इसका मुख्य उद्देश्य ऐहिक जीवन की नाना वेदनाओं से परिश्रांत जनता का मनोरंजन है-यह देव, दानव एवं मानव समाज के लिए आमोद-प्रमोद का सरल साधन है। यह नयनों की तृप्ति करनेवाला एवं भावोद्रेक का परिमार्जन कर प्रेक्षकवर्ग को आह्लादित करनेवाला मनोरम अनुसंधान है-यह जातिभेद, वर्गभेद, वयोभेद आदि नैसर्गिक एवं सामाजिक विभेदों से निरपेक्ष, भिन्न रुचि की जनता का सामान्य रूप से समाराधन करनेवाला एक कांत, 'चाक्षुषक्रतु' है। इसके प्रवर्तक स्वयं प्रजापति हैं जिन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से

अभिनय तथा अथर्वांगिरस से रस का परिग्रह कर सार्ववर्णिक पंचम वेद का प्रादुर्भाव किया। उमा-महादेव ने सुप्रीत हो लोकानुरंजन के हेतु लास्य एवं ताण्डव का सहयोग देकर इसे उपकृत किया है। वस्तुतः ऐसा कोई शास्त्र, कोई शिल्प, न कोई विद्या और न कोई कला ऐसी है जिसका प्रतिनिधित्व नाट्यशास्त्र में न हो। इस तरह अनुपम दिव्यता से अनुप्राणित नाट्यशास्त्र के अधिष्ठाता देव की भी कल्पना, इतर वेद एवं वेदांगों के अधिष्ठाताओं की भाँति, की गई है जिसके स्वरूप का उल्लेख 'नृसिंहप्रासाद' नामक ग्रंथ में मिलता है।

नाट्यशास्त्रमिदं रम्यं मृगवक्त्रं जटाधरम्।
अक्षसूत्रं त्रिशूलं च विभ्राणाच त्रिलोचनम्।

नाट्य संबंधी नियमों की संहिता का नाम 'नाट्यशास्त्र' है। भारतीय परंपरा के अनुसार नाट्यशास्त्र के आद्य रचयिता स्वयं प्रजापति माने गए हैं और उसे 'नाट्यवेद' कहकर नाट्यकला को विशिष्ट सम्मान प्रदान किया गया है।

जिस प्रकार परम पुरुष के निःश्वास से आविर्भूत वेदराशि के द्रष्टा विविध ऋषि प्रकल्पित हैं उसी तरह महादेव द्वारा प्रोक्त नाट्यवेद के द्रष्टा शिलाली, कृशाश्व और भरतमुनि माने गए हैं। शिलाली एवं कृशाश्व द्वारा संकलित नाट्यसंहिताएँ आज उपलब्ध नहीं है, केवल भरत मुनि द्वारा प्रणीत ग्रंथ ही उपलब्ध हुआ है, जो 'नाट्यशास्त्र' के नाम से प्रथित है। इसका प्रणयन संभवतः कश्मीर, भारत देश में हुआ।

नाट्यशास्त्र का रचनाकाल, निर्माणशैली तथा बहिःसाक्ष्य के आधार पर ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के लगभग स्थिर किया जा सकता है।

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र

इस ग्रन्थ में प्रत्यभिज्ञा दर्शन की छाप है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में स्वीकृत 36 मूल तत्त्वों के प्रतीक स्वरूप नाट्यशास्त्र में 36 अध्याय हैं। पहले अध्याय में नाट्योत्पत्ति, दूसरे में मण्डपविधान देने के पश्चात् अगले तीन अध्यायों में नाट्यारम्भ से पूर्व की प्रक्रिया का विधान वर्णित है। छठे और सातवें अध्याय में रसों और भावों का व्याख्यान है, जो भारतीय काव्यशास्त्र में व्याप्त रससिद्धान्त की आधारशिला है। आठवें और नवें अध्याय में उपांग एवं अंगों द्वारा प्रकल्पित अभिनय के स्वरूप की व्याख्या कर अगले चार अध्यायों में गति और करणों का उपन्यास किया है। अगले चार अध्यायों में छन्द और अलंकारों का स्वरूप तथा स्वरविधान बतलाया है। नाट्य के भेद तथा कलेवर का सांगोपांग विवरण 18वें

और 19वें अध्याय में देकर 20वें वृत्ति विवेचन किया है। तत्पश्चात् 29वें अध्याय में विविध प्रकार के अभिनयों की विशेषताएँ दी गई हैं। 29 से 34 अध्याय तक गीत वाद्य का विवरण देकर 35वें अध्याय में भूमिविकल्प की व्याख्या की है। अंतिम अध्याय उपसंहारात्मक है।

यह ग्रंथ मुख्यत: दो पाठान्तरों में उपलब्ध है 1. औत्तरीय पाठ और 2. दाक्षिणात्य। पाण्डुलिपियों में एक और 37वाँ अध्याय भी क्वचित् उपलब्ध होता है जिसका समावेश निर्णयसागरी संस्करण में संपादक ने किया है। इसके अतिरिक्त मूल मात्र ग्रंथ का प्रकाशन चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से भी हुआ है जिसका पाठ निर्णयसागरी पाठ से भिन्न है। अभिनव भारती टीका सहित नाट्यशास्त्र का संस्करण गायकवाड सीरीज के अंतर्गत बड़ौदा से प्रकाशित है।

वस्तुत: यह ग्रन्थ नाट्यसंविधान तथा रससिद्धान्त की मौलिक संहिता है। इसकी मान्यता इतनी अधिक है कि इसके वाक्य 'भरतसूत्र' कहे जाते हैं। सदियों से इसे आर्ष सम्मान प्राप्त है। इस ग्रंथ में मूलत: 12,000 पद्य तथा कुछ गद्यांश भी था, इसी कारण इसे 'द्वादशसाहस्री संहिता' कहा जाता है। परन्तु कालक्रमानुसार इसका संक्षिप्त संस्करण प्रचलित हो चला जिसका आयाम छह हजार पद्यों का रहा और यह संक्षिप्त संहिता 'षटसाहस्री' कहलाई। भरतमुनि उभय संहिता के प्रणेता माने जाते हैं और प्राचीन टीकाकारों द्वारा उनका 'द्वादश साहस्रीकार' तथा 'षट्साहस्रीकार' की उपाधि से परामर्श यत्र तत्र किया गया है। जिस तरह आज उपलब्ध चाणक्य नीति का आधार वृद्ध चाणक्य और स्मृतियों का आधार क्रमश: वृद्ध वसिष्ठ, वृद्ध मनु आदि माना जाता है, उसी तरह वृद्ध भरत का भी उल्लेख मिलता है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वसिष्ठ, मनु, चाणक्य, भरत आदि दो दो व्यक्ति हो गए, परन्तु इस सन्दर्भ में 'वृद्ध' का तात्पर्य परिपूर्ण संहिताकार से है।

अध्याय	**अध्याय का नाम**
अध्याय 1	नाट्य
अध्याय 2	नाट्यमण्डप
अध्याय 3	रङ्गपूजा
अध्याय 4	ताण्डव
अध्याय 5	पूर्वरङ्ग
अध्याय 6	रस
अध्याय 7	भाव
अध्याय 8	उपाङ्ग

अध्याय 9	अङ्ग
अध्याय 10	चारीविधान
अध्याय 11	मण्डलविधान
अध्याय 12	गतिप्रचार
अध्याय 13	करयुक्तिधर्मीव्यंजक
अध्याय 14	छन्दोविधान
अध्याय 15	छन्दोविचितिः
अध्याय 16	काव्यलक्षण
अध्याय 17	काकुस्वरव्यंजन
अध्याय 18	दशरूपनिरूपण
अध्याय 19	सन्धिनिरूपण
अध्याय 20	वृत्तिविकल्पन
अध्याय 21	आहार्याभिनय
अध्याय 22	सामान्याभिनय
अध्याय 23	नेपथ्य
अध्याय 24	पुंस्त्र्युपचार
अध्याय 25	चित्राभिनय
अध्याय 26	विकृतिविकल्प
अध्याय 27	सिद्धिव्यंजक
अध्याय 28	जातिविकल्प
अध्याय 29	ततातोद्यविधान
अध्याय 30	सुषिरातोद्यलक्षण
अध्याय 31	ताल
अध्याय 32	गुणदोषविचार
अध्याय 33	प्रकृति
अध्याय 34	भूमिकाविकल्प
अध्याय 35	नाट्यशाप
अध्याय 36	गुह्यतत्त्वकथन

टीकाएँ

नाट्यशास्त्र पर अनेक व्याख्याएँ लिखी गईं और भरतसूत्रों के व्याख्याता अपने-अपने सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य माने गए जिनके मत काव्यशास्त्र

सम्बंधी विविध-वाद के रूप में प्रचलित हुए। ऐसे आचार्यों में उल्लेखनीय नाट्यशास्त्र के व्याख्याता हैं- रीतिवादी भट्ट उद्भट, पुष्टिवादी भट्ट लोल्लट, अनुमितिवादी शंकुक, मुक्तिवादी भट्ट नायक और अभिव्यक्तिवादी अभिनव गुप्त। इनके अतिरिक्त नखकुट्ट, मातृगुप्त, राहुलक, कीर्तिधर, थकलीगर्भ, हर्षदेव तथा श्रीपादशिष्य ने भी नाट्यशास्त्र पर अपनी अपनी व्याख्याएँ प्रस्तुत की थीं। इनमें से 'श्रीपादशिष्यकृत' 'भरततिलक' नाम की टीका सर्वप्राचीन प्रतीत होती है। अभिनवगुप्त द्वारा रचित अभिनवभारती, नाट्यशास्त्र पर सर्वाधिक प्रचलित भाष्य है। अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र को 'नाट्यवेद' भी कहा है।

नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित संगीताध्याय के व्याख्याता अनेक हो गए हैं। जिनमें प्रमुख भट्ट सुमनस्, भट्टवृद्धि, भट्टयंत्र और भट्ट गोपाल हैं। इनके अतिरिक्त भरतमुनि के प्रधान शिष्य मातंग, दत्तिल एवं कोहल नाट्यशास्त्र के आधार पर संगीतपरक स्वतंत्र ग्रंथ, सदाशिव और रंदिकेश्वर ने नृत्य पर तथा भट्ट तौत प्रभृति ने रसमीमांसा पर रचे हैं। भरत नाट्यशास्त्र का रस भावाध्याय भारतीय मनोविज्ञान का आधार ग्रंथ माना जाता है।

9

पंचतन्त्र

संस्कृत नीतिकथाओं में पंचतंत्र का पहला स्थान माना जाता है। यद्यपि यह पुस्तक अपने मूल रूप में नहीं रह गयी है, फिर भी उपलब्ध अनुवादों के आधार पर इसकी रचना तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के आस-पास निर्धारित की गई हैं। इस ग्रंथ के रचयिता पं. विष्णु शर्मा है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि जब इस ग्रंथ की रचना पूरी हुई, तब उनकी उम्र लगभग 80 वर्ष थी। पंचतंत्र को पाँच तंत्रों (भागों) में बाँटा गया है–

मित्रभेद (मित्रों में मनमुटाव एवं अलगाव)

मित्रलाभ या मित्रसंप्राप्ति (मित्र प्राप्ति एवं उसके लाभ)

काकोलुकीयम् (कौवे एवं उल्लुओं की कथा)

लब्धप्रणाश (हाथ लगी चीज (लब्ध) का हाथ से निकल जाना (हानि)

अपरीक्षित कारक (जिसको परखा नहीं गया हो उसे करने से पहले सावधान रहें य हड़बड़ी में कदम न उठायें)

मनोविज्ञान, व्यवहारिकता तथा राजकाज के सिद्धांतों से परिचित कराती ये कहानियाँ सभी विषयों को बड़े ही रोचक तरीके से सामने रखती हैं तथा साथ ही साथ एक सीख देने की कोशिश करती है।

पंचतंत्र की कई कहानियों में मनुष्य-पात्रों के अलावा कई बार पशु-पक्षियों को भी कथा का पात्र बनाया गया है तथा उनसे कई शिक्षाप्रद बातें कहलवाने की कोशिश की गई है।

पंचतन्त्र की कहानियां बहुत जीवंत हैं। इनमें लोकव्यवहार को बहुत सरल तरीके से समझाया गया है। बहुत से लोग इस पुस्तक को नेतृत्व क्षमता विकसित करने का एक सशक्त माध्यम मानते हैं। इस पुस्तक की महत्ता इसी से प्रतिपादित होती है कि इसका अनुवाद विश्व की लगभग हर भाषा में हो चुका है।

नीतिकथाओं में पंचतंत्र का पहला स्थान है। पंचतंत्र ही हितोपदेश की रचना का आधार है। स्वयं नारायण पण्डित जी ने स्वीकार किया है-

पंचतन्त्रत्तथाऽन्यस्माद् ग्रंथादाकृष्य लिख्यते।

–श्लोक सं.9, प्रस्ताविका, हितोपदेश

पंचतन्त्र का रचना काल

विभिन्न उपलब्ध अनुवादों के आधार पर इसकी रचना तीसरी शताब्दी के आस-पास निर्धारित की जाती है। पंचतन्त्र की रचना किस काल में हुई, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि पंचतन्त्र की मूल प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वानों ने पंचतन्त्र के रचयिता एवं पंचतन्त्र की भाषा शैली के आधार इसके रचनाकाल के विषय में अपने मत प्रस्तुत किए हैं।

महामहोपाध्याय पं. सदाशिव शास्त्री के अनुसार पंचतन्त्र के रचयिता विष्णुशर्मा थे और विष्णुशर्मा चाणक्य का ही दूसरा नाम था। अत: पंचतन्त्र की रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में ही हुई है और इसका रचना काल 300 ई.पू. माना जा सकता है। पर पाश्चात्य तथा कुछ भारतीय विद्वान् ऐसा नहीं मानते, उनका कथन है कि चाणक्य का दूसरा नाम विष्णुगुप्त था विष्णुशर्मा नहीं, तथा उपलब्ध पंचतन्त्र की भाषा की दृष्टि से तो यह गुप्तकालीन रचना प्रतीत होती है।

महामहोपाध्याय पं. दुर्गाप्रसाद शर्मा ने विष्णुशर्मा का समय अष्टमशतक के मध्य भाग में माना है, क्योंकि पंचतन्त्र के प्रथम तन्त्र में आठवीं शताब्दी के दामोदर गुप्त द्वारा रचित कुट्टिनीमत की पर्यक: स्वास्तरणम्य इत्यादि आर्या देखी जाती है, अत: यदि विष्णुशर्मा पंचतन्त्र के रचयिता थे तो वे अष्टम शतक में हुए होंगे। परन्तु केवल उक्त श्लोक के आधर पर पंचतन्त्र की रचना अष्टम शतक में नहीं मानी जा सकती, क्योंकि यह श्लोक किसी संस्करण में प्रक्षिप्त भी हो सकता है।

हर्टेल और डॉ. कीथ, इसकी रचना 200 ई.पू. के बाद मानने के पक्ष में है। चाणक्य के अर्थशास्त्र का प्रभाव भी पंचतन्त्र में दिखाई देता है इसके आधार

पर भी यह कहा जा सकता है कि चाणक्य का समय लगभग चतुर्थ शताब्दी पूर्व का है अत: पंचतन्त्र की रचना तीसरी शताब्दी के पूर्व हुई होगी।

इस प्रकार पंचतन्त्र का रचनाकाल विषयक कोई भी मत पूर्णतया सर्वसम्मत नहीं है।

पंचतंत्र के संस्करण

संस्करण–पंचतन्त्र के चार संस्करण उपलब्ध हैं–

प्रथम संस्करण मूलग्रन्थ का पहलवी अनुवाद है, जो अब सीरियन एवं अरबी अनुवादों के रूप में प्राप्त होता है।

द्वितीय संस्करण के रूप में पंचतन्त्र गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' में दिखाई पड़ता है। 'बृहत्कथा की रचना पैशाची भाषा में हुई थी किन्तु इसका मूलरूप नष्ट हो गया है और क्षेमेन्द्रकृत 'बृहत्कथा मंजरी' तथा सोमदेव लिखित 'कथासरित्सागर' उसी के अनुवाद हैं।

तृतीय संस्करण में तन्त्रख्यायिका एवं उससे सम्बद्ध जैन कथाओं का संग्रह है। 'तन्त्रख्यायिका' को सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। इसका मूल स्थान कश्मीर है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ. हर्टेल ने अत्यन्त श्रम के साथ इसके प्रामाणिक संस्करण को खोज निकाला था। इनके अनुसार 'तन्त्रख्यायिका' या तन्त्रख्या ही पंचतन्त्र का मूलरूप है। यही आधुनिक युग का प्रचलित 'पंचतन्त्र' है।

चतुर्थ संस्करण दक्षिणी 'पंचतन्त्र' का मूलरूप है तथा इसका प्रतिनिधित्व नेपाली 'पंचतन्त्र' एवं 'हितोपदेश' करते हैं।

इस प्रकार 'पंचतन्त्र' एक ग्रन्थ न होकर एक विशाल साहित्य का प्रतिनिधि है।

विश्व–साहित्य में भी पंचतन्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इन अनुवादों में पहलवी भाषा का 'करटकदमनक' नाम का अनुवाद ही सबसे प्राचीन अनुवाद माना जाता है। विंटरनित्ज के अनुसार जर्मन साहित्य पर पंचतन्त्र का अधिक प्रभाव देखा जाता है। इसी प्रकार ग्रीक की ईसप की कहानियों का तथा अरब की 'अरेबिअन नाइट्स' आदि कथाओं का आधार पंचतन्त्र ही है। ऐसा माना जाता है कि पंचतन्त्र का लगभग 50 विविध भाषाओं में अब तक अनुवाद हो चुका है और इसके लगभग 200 संस्करण भी हो चुके हैं। यही इसकी लोकप्रियता का परिचायक है।

पंचतन्त्र का स्वरूप

पंचतन्त्र में पांच तन्त्र या विभाग है। (पंचानाम् तन्त्रणाम् समाहार:-द्विगुसमास) विभाग को तन्त्र इसलिए कहा गया है, क्योंकि इनमें नैतिकतापूर्ण शासन की विधियाँ बतायी गयीं हैं। ये तन्त्र हैं- मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति (मित्रलाभ), काकोलूकीयम् (सन्धि-विग्रह), लब्धप्रणाश एवं अपरीक्षितकारक।

संक्षेप में इन तन्त्रों की विषयवस्तु इस प्रकार है-

मित्रभेद

नीतिकथाओं में एक मुख्य कथा होती है और उसको पुष्ट करने के लिए अनेक गौण कथाएं होती हैं उसी प्रकार 'मित्रभेद' नामक इस प्रथम तन्त्र में अंगीकथा के पूर्व दक्षिण में महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति की कथा दी गई है जिसमें यह बताया गया है कि वे अपने मूर्ख पुत्रों के कारण चिन्तित थे और इसलिए वे विष्णुशर्मा नामक विद्वान् को अपने पुत्रों को शिक्षित करने के सौंप देते है और विष्णुशर्मा उन्हें छ: मास में ही कथाओं के माध्यम से सुशिक्षित करने में सफल होते हैं। तत्पश्चात् मित्रभेद नामक भाग की अंगी-कथा में, एक दुष्ट सियार द्वारा पिंगलक नामक सिंह के साथ संजीवक नामक बैल की शत्रुता उत्पन्न कराने का वर्णन है जिसे सिंह ने आपत्ति से बचाया था और अपने दो मन्त्रियों- करकट और दमनक के विरोध करने पर भी उसे अपना मित्र बना लिया था। इस तन्त्र में अनेक प्रकार की शिक्षाएं दी गई है जैसे-कि धैर्य से व्यक्ति कठिन से कठिन परिस्थिति का भी सामना कर सकता है अत: प्रारब्ध के बिगड़ जाने पर भी धैर्य का त्याग नहीं करना चाहिए-

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले धैर्यात्कदाचित् गतिमाप्नुयात्स: (मित्रभेद, श्लोक 345)

मित्रसम्प्राप्ति

इस तन्त्र में मित्र की प्राप्ति से कितना सुख एवं आनन्दप्राप्त होता है वह कपोतराज चित्रग्रीव की कथा के माध्यम से बताया गया है। विपत्ति में मित्र ही सहायता करता है-

सर्वेषामेव मर्त्यानां व्यसने समुपस्थिते।

वाड्मात्रोणापि साहा यंमित्रदन्यो न संदधे (मित्रसम्प्राप्ति श्लोक 12)

ऐसा कहा गया है कि मित्र का घर में आना स्वर्ग से भी अधिक सुख को देता है।

सुहृदो भवने यस्य समागच्छन्ति नित्यशः।
चित्ते च तस्य सौख्यस्य न किंचत्प्रतिमं सुखम् (मित्रसम्प्राप्ति श्लोक 18)

इस प्रकार इस तन्त्र का उपदेश यह है कि उपयोगी मित्र ही बनाने चाहिए जिस प्रकार कौआ, कछुआ, हिरण और चूहा मित्रता के बल पर ही सुखी रहे।

काकोलूकीय

इसमें युद्ध और सन्धि का वर्णन करते हुए उल्लुओं की गुहा को कौओं द्वारा जला देने की कथा कही गयी है। इसमें यह बताया गया है कि स्वार्थसिद्धि के लिए शत्रु को भी मित्र बना लेना चाहिए और बाद में धोखा देकर उसे नष्ट कर देना चाहिए। इस तन्त्र में भी कौआ उल्लू से मित्रता कर लेता है और बाद में उल्लू के किले में आग लगवा देता है। इसलिए शत्रुओं से सावधन रहना चाहिए क्योंकि जो मनुष्य आलस्य में पड़कर स्वच्छन्दता से बढ़ते हुए शत्रु और रोग की उपेक्षा करता है- उसके रोकने की चेष्टा नहीं करता वह क्रमशः उसी (शत्रु अथवा रोग) से मारा जाता है-

य उपेक्षेत शत्रु स्वं प्रसरस्तं यदृच्छया।
रोग चाऽलस्यसंयुक्तः स शनैस्तेन हन्यते (काकोलूकीय श्लोक 2)

लब्धप्रणाश

इस तन्त्र में वानर और मगरमच्छ की मुख्य कथा है और अन्य अवान्तर कथाएं हैं। इन कथाओं में यह बताया गया है कि लब्ध अर्थात् अभीष्ट की प्राप्ति होते-होते कैसे रह गई अर्थात नष्ट हो गई। इसमें वानर और मगरमच्छ की कथा के माध्यम से शिक्षा दी गई है कि बुद्धिमान अपने बुद्धिबल से जीत जाता है और मूर्ख हाथ में आई हुई वस्तु से भी वंचित रह जाता है।

अपरीक्षितकारक

पंचतन्त्र के इस अन्तिम तन्त्र अर्थात् भाग में विशेषरूप से विचार पूर्वक सुपरीक्षित कार्य करने की नीति पर बल दिया है, क्योंकि अच्छी तरह विचार किए बिना एवं भलीभांति देखे सुने बिना किसी कार्य को करने वाले व्यक्ति को कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होती अपितु जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। इस तन्त्र की मुख्य कथा में बिना सोचे समझे अन्धानुकरण करने वाले एक नाई की कथा है जिसको

मणिभद्र नाम के सेठ का अनुकरण करजैन-संन्यासियों के वध के दोष पर न्यायाधीशों द्वारा मृत्युदण्ड दिया गया। अत: बिना परीक्षा किए हुए नाई के समान अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए-

कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम्।

तन्नरेण न कर्त्तव्यं नापितेनात्र यत् कृतम् (अपरीक्षितकारक श्लोक-1)

इसमें यह भी बताया है कि पूरी जानकारी के बिना भी कोई कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि बाद में पछताना पड़ता है जैसे–कि ब्राह्मण पत्नी ने बिना कुछ देखे खून से लथपथ नेवले को यह सोचकर मार दिया कि इस ने मेरे पुत्र को खा लिया है वस्तुत: नेवले ने तो सांप से बच्चे की रक्षा करने के लिए सांप को मारा था जिससे उसका मुख खून से सना हुआ था।

इसलिए कहा गया

अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम्।
पश्चाद्भवति सन्तापो ब्राह्मण्या नकुले यथा (अपरीक्षित कारक श्लोक-17)

पंचतन्त्र में उक्त कथाओं के अतिरिक्त बहुत सी कहानियों का संग्रह है। इस प्रकार पंचतन्त्र एक उपदेशपरक रचना है। इसमें लेखक ने अपनी व्यवहार कुशलता राजनैतिकपटुता एवं ज्ञान का परिचय दिया है। नीति-कथाओं के मानवेतर पात्र प्राय: दो प्रकार के होते हैं, सजीव प्राणी तथा अचेतन पदार्थ। पंचतन्त्र में भी ये दो प्रकार के पात्र देखे जाते हैं- पशुओं में सिंह, व्याघ्र, शृगाल, शशक, वृषभ, गधा, आदि, पक्षियों में काक, उलूक, कपोत, मयूर, चटक, शुक आदि तथा इतर प्राणियों में सर्प, नकुल, पिपीलिका आदि। इनके अतिरिक्त नदी, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, गुहा आदि भी अचेतन पात्र हैं, जिन पर कि मानवीय व्यवहारों का आरोप किया गया है। पंचतन्त्र में मानव को व्यवहार कुशल बनाने का प्रयास अत्यधिक सरल एवं रोचक शैली में किया गया है। आधुनिक युग में बच्चों को इन कथाओं के बारे में अवश्य पढाया जाना चाहिये। पंचतन्त्र के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि-

'पंचतन्त्र एक नीति शास्त्र या नीति ग्रन्थ है- नीति का अर्थ जीवन में बुद्धि पूर्वक व्यवहार करना है। चतुरता और धूर्तता नहीं, नैतिक जीवन वह जीवन है जिसमें मनुष्य की समस्त शक्तियों और सम्भावनाओं का विकास हो अर्थात् एक ऐसे जीवन की प्राप्ति हो जिसमें आत्मरक्षा, धन-समृद्धि, सत्कर्म, मित्रता एवं

विद्या की प्राप्ति हो सके और इनका इस प्रकार समन्वय किया गया हो कि जिससे आनंद की प्राप्ति हो सके, इसी प्रकार के जीवन की प्राप्ति के लिए, पंचतन्त्र में चतुर एवं बुद्धिमान पशु-पक्षियों के कार्य व्यापारों से सम्बद्ध कहानियां ग्रथित की गई हैं। पंचतन्त्र की परम्परा के अनुसार भी इसकी रचना एक राजा के उन्मार्गगामी पुत्रों की शिक्षा के लिए की गई है और लेखक इसमें पूर्ण सफल रहा है।'

10

शिशुपालवध

शिशुपालवध महाकवि माघ द्वारा रचित संस्कृत काव्य है। 20 सर्गों तथा 1800 अलंकारिक छन्दों में रचित यह ग्रन्थ संस्कृत के छः महाकाव्यों में गिना जाता है। इसमें कृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा का वर्णन है।

परिचय

जरासंध का वध करके श्री कृष्ण, अर्जुन और भीम इन्द्रप्रस्थ लौट आये एवं धर्मराज युधिष्ठिर से सारा वृत्तांत कहा जिसे सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुये। तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की तैयारी शुरू करवा दी। उस यज्ञ के ऋतिज आचार्य होता थे।

यज्ञ को सफल बनाने के लिये वहाँ पर भारतवर्ष के समस्त बड़े-बड़े ऋषि महर्षि-भगवान वेद व्यास, भारद्वाज, सुनत्तु, गौतम, असित, वशिष्ठ, च्यवन, कण्डव, मैत्रोय, कवष, जित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिन, क्रतु, पैल, पाराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतहोत्र, मधुद्वन्दा, वीरसेन, अकृतब्रण आदि-उपस्थित थे। सभी देशों के राजाधिराज भी वहाँ पधारे।

ऋतिजों ने शास्त्र विधि से यज्ञ-भूमि को सोने के हल से जुतवा कर धर्मराज युधिष्ठिर को दीक्षा दी। धर्मराज युधिष्ठिर ने सोमलता का रस निकालने के समय यज्ञ की भूल-चूक देखने वाले सद्पतियों की विधिवत पूजा की। अब

समस्त सभासदों में इस विषय पर विचार होने लगा कि सब से पहले किस देवता की पूजा की जाये। तब सहदेव जी उठ कर बोले –

श्री कृष्ण देवन के देव, उन्हीं को सब से आगे लेव।
ब्रह्मा शंकर पूजत जिनको, पहिली पूजा दीजै उनको।
अक्षर ब्रह्म कृष्ण यदुराई, वेदन में महिमा तिन गाई।
अग्र तिलक यदुपति को दीजै, सब मिलि पूजन उनको कीजै।

परमज्ञानी सहदेव जी के वचन सुनकर सभी सत्पुरुषों ने साधु! साधु! कह कर पुकारा। भीष्म पितामह ने स्वयं अनुमोदन करते हुये सहदेव के कथन की प्रशंसा की। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने शास्त्रोक्त विधि से भगवान श्री कृष्ण का पूजन आरम्भ किया। चेदिराज शिशुपाल अपने आसन पर बैठा हुआ यह सब दृश्य देख रहा था। सहदेव के द्वारा प्रस्तावित तथा भीष्म के द्वारा समर्थित श्री कृष्ण की अग्र पूजा को वह सहन न कर सका और उसका हृदय क्रोध से भर उठा। वह उठ कर खड़ा हो गया और बोला, "हे सभासदों! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कालवश सभी की मति मारी गई है। क्या इस बालक सहदेव से अधिक बुद्धिमान व्यक्ति इस सभा में नहीं है, जो इस बालक की हाँ में हाँ मिला कर अयोग्य व्यक्ति की पूजा स्वीकार कर ली गई है? क्या इस कृष्ण से आयु, बल तथा बुद्धि में कोई भी बड़ा नहीं है? बड़े-बड़े त्रिकालदर्शी ऋषि-महर्षि यहां पधारे हुये हैं। बड़े-बड़े राजा-महाराजा यहाँ पर उपस्थित हैं। क्या इस गाय चराने वाल ग्वाले के समान कोई और यहाँ नहीं है? क्या कौआ हविश्यान्न ले सकता है? क्या गीदड़ सिंह का भाग प्राप्त कर सकता है? न इसका कोई कुल है न जाति, न ही इसका कोई वर्ण है। राजा ययाति के शाप के कारण राजवंशियों ने इस यदुवंश को वैसे ही बहिष्कृत कर रखा है। यह जरासंघ के डर से मथुरा त्याग कर समुद्र में जा छिपा था। भला यह किस प्रकार अग्रपूजा पाने का अधिकारी है? इस प्रकार शिशुपाल जगत के स्वामी श्री कृष्ण को गाली देने लगा। उसके इन कटु वचनों की निन्दा करते हुये अर्जुन और भीमसेन अनेक राजाओं के साथ उसे मारने के लिये उद्यत हो गये किन्तु श्री कृष्णचन्द्र ने उन सभी को रोक दिया। श्री कृष्ण के अनेक भक्त सभा छोड़ कर चले गये क्योंकि वे श्री कृष्ण की निन्दा नहीं सुन सकते थे।

जब शिशुपाल श्री कृष्ण को एक सौ गाली दे चुका तब श्री कृष्ण ने गरज कर कहा, "बस शिशुपाल! अब मेरे विषय में तेरे मुख से एक भी अपशब्द निकला तो तेरे प्राण नहीं बचेंगे। मैंने तेरे एक सौ अपशब्दों को क्षमा करने की

प्रतिज्ञा की थी इसी लिये अब तक तेरे प्राण बचे रहे।" श्री कृष्ण के इन वचनों को सुन कर सभा में उपस्थित शिशुपाल के सारे समर्थक भय से थर्रा गये किन्तु शिशुपाल का विनाश समीप था। अतः उसने काल के वश होकर अपनी तलवार निकालते हुये श्री कृष्ण को फिर से गाली दी। शिशुपाल के मुख से अपशब्द के निकलते ही श्री कृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र चला दिया और पलक झपकते ही शिशुपाल का सिर कट कर गिर गया। उसके शरीर से एक ज्योति निकल कर भगवान श्री कृष्णचन्द्र के भीतर समा गई और वह पापी शिशुपाल, जो तीन जन्मों से भगवान से बैर भाव रखते आ रहा था, परमगति को प्राप्त हो गया। यह भगवान विष्णु का वही द्वारपाल था जिसे कि सनकादि मुनियों ने शाप दिया था। वे जय और विजय अपने पहले जन्म में हिरण्यकश्यपु और हिरण्याक्ष, दूसरे जन्म में रावण और कुम्भकर्ण तथा अंतिम तीसरे जन्म में कंस और शिशुपाल बने एवं श्री कृष्ण के हाथों अपने परमगति को प्राप्त होकर पुनः विष्णुलोक लौट गये।

11

मालविकाग्निमित्रम्

मालविकाग्निमित्रम् कालिदास द्वारा रचित संस्कृत नाटक है। यह पाँच अंकों का नाटक है जिसमे मालवदेश की राजकुमारी मालविका तथा विदिशा के राजा अग्निमित्र का प्रेम और उनके विवाह का वर्णन है। वस्तुतः यह नाटक राजमहलों में चलने वाले प्रणय षड्यन्त्रों का उन्मूलक है तथा इसमें नाट्यक्रिया का समग्र सूत्र विदूषक के हाथों में समर्पित है।

यहश्रृंगार रस प्रधान नाटक है और कालिदास की प्रथम नाट्य कृति माना जाता है। ऐसा इसलिये माना जाता है, क्योंकि इसमें वह लालित्य, माधुर्य एवं भावगाम्भीर्य दृष्टिगोचर नहीं होता जो विक्रमोर्वशीय अथवा अभिज्ञानशाकुन्तलम् में है।

कालिदास ने प्रारम्भ में ही सूत्रधार से कहलवाया है –

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।

अर्थात पुरानी होने से ही न तो सभी वस्तुएँ अच्छी होती हैं और न नयी होने से बुरी तथा हेय। विवेकशील व्यक्ति अपनी बुद्धि से परीक्षा करके श्रेष्ठकर वस्तु को अंगीकार कर लेते हैं और मूर्ख लोग दूसरों द्वारा बताने पर ग्राह्य अथवा अग्राह्य का निर्णय करते हैं।

वस्तुतः यह नाटक नाट्य-साहित्य के वैभवशाली अध्याय का प्रथम पृष्ठ है। लगभग 2200 वर्ष पूर्व के युग का चित्रण करते इस नाटक में शुंग वंश के

काल की कला, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था आदि की उल्लेखनीय झलक मिलती है। इस नाटक में कालिदास द्वारा स्वांग, चतुष्पदी छन्द तथा गायन के साथ अभिनय के भी संकेत किये गए हैं, जो इंगित करते हैं कि उस युग में भी लोकनाट्य के तत्त्व विद्यमान थे।

कालिदास ने इस नाटक में अत्यन्त मनोहर नृत्य-अभिनय का उल्लेख किया है। वह चित्र अपने में इतना प्रभावशाली, रमणीय और सरस है कि समूचे तत्कालीन साहित्य में अप्रतिम माना जाता है। नाटक में दो नृत्याचार्यों में अपनी कला निपुणता के सम्बन्ध में झगड़ा होता है और यह निर्णय होता है कि दोनों अपनी-अपनी शिष्याओं का नृत्य-अभिनय दिखाएँ। यह भी निर्णय होता है कि पक्षपातरहित निर्णय के लिए जानी जानेवाली विदुषी, भगवती कौशिकी निर्णय करेंगी कि दोनों में कौन श्रेष्ठ है। दोनों आचार्य तैयार होते हैं, मृदंग बज उठता है, प्रेक्षागृह में दर्शकगण यथास्थान बैठ जाते हैं और प्रतियोगिता प्रारम्भ होती है। इस प्रकार के दृश्य का पूर्ववर्ती साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं हुआ है जबकि परवर्ती फिल्मों और धारावाहिकों में इससे प्रेरणा लेकर आज भी यह दृश्य प्रस्तुत किया जाता है।

कथावस्तु

नाटक की कथावस्तु राजकुमारी मालविका और विदिशा नरेश अग्निमित्र के मध्य प्रेम पर केन्द्रित है। विदर्भ राज्य की स्थापना अभी कुछ ही दिनों पूर्व हुई थी। इसी कारण इस नाटक में विदर्भ राज्य को "नवसरोपणशिथिलस्तः" (जो सद्यः स्थापित है) कहा गया है। यज्ञसेन इस समय विदर्भ का राजा है, जो पूर्व मौर्य सम्राट् वृहद्रथ के मन्त्री का सम्बन्धी था। विदर्भराज ने अग्निमित्र की अधीनता को स्वीकार नहीं किया। दूसरी ओर कुमार माधवसेन यद्यपि यज्ञसेन का सम्बन्धी (चचेरा भाई) था, परन्तु अग्निमित्र ने उसे अपनी ओर मिला लिया। जब माधवसेन गुप्त रूप से अग्निमित्र से मिलने जा रहा था, यज्ञसेन के सीमारक्षकों ने उसे बन्दी बना लिया। अग्निमित्र इससे अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। उसने यज्ञसेन के पास यह सन्देश भेजा कि वह माधवसेन को मुक्त कर दे। किन्तु यज्ञसेन ने माधवसेन को इस शर्त पर छोड़ने का आश्वासन दिया कि शुंगों के बन्दीगृह के बन्दी पूर्व मौर्य सचिव तथा उनके साले को मुक्त करते हैं तो ही कुमार माधवसेन को मुक्त किया जाएगा। इससे अग्निमित्र और क्रुद्ध हो गए और उन्होंने अपने सेनापति वीरसेन, जो उनके मित्र भी थे, से आक्रमण करने का आदेश दे दिया।

इस प्रकार, विदर्भ पर शुंगों का आक्रमण हुआ। युद्ध में यज्ञसेन आत्म समर्पण करने के लिए बाध्य हुआ। माधवसेन मुक्त कर दिया गया। विदर्भ राज्य को दोनों चचेरे भाइयों के बीच बाँट दिया गया। वर्धा नदी को उन दोनों राज्यों की सीमा को निर्धारित किया गया। वर्धा नदी के एक तरफ माधवसेन और दूसरी तरफ यज्ञसेन को राजा बनाया जाता है। दोनों अग्निमित्र के आधीन शासन करना शुरू करते है।

इधर विदर्भ राज्य पर अधिकार हेतु संघर्ष की स्थिति में माधवसेन अपनी बहन मालविका को सुरक्षा हेतु अन्यत्र भेज देते हैं। परिस्थितिवश मालविका भागकर विदिशा आती है, यहां राज्य के महामात्य (मंत्री) से मुलाकात होती है, जो उन्हें वेष बदलकर रहने की अनुमति देता है। अग्निमित्र के राजमहल में ही, अग्निमित्र की पहली पत्नी महारानी धारिणी मालविका को संगीत-नृत्य सिखाने हेतु नाट्यचार्य गणदास को नियुक्त करती हैं।

विदर्भ विजय से अग्निमित्र शुंग की प्रतिष्ठा में अच्छी अभिवृद्धि हुई। एक दिन अग्निमित्र विदर्भ जाते है वहाँ राजा माधवसेन के महल में किसी चित्रकार द्वारा बनाये राजा माधवसेन की बहन मालविका का चित्र देखते है और उससे उन्हें प्रेम हो जाता है।

धारिणी प्रयत्न करती है कि राजा अग्निमित्र मालविका के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध न हो जाएं। फिर भी इसकी जानकारी अग्निमित्र को हो जाती है, वह मालविका की सुन्दरता पर मोहित हो जाते हैं। राजा के मित्र और विदूषक गौतम के प्रयासों से दोनों का मिलन होता है। कुछ समय बाद विदिशा में सांस्कृतिक आयोजन होता है, जिसमें राजा अग्निमित्र मालविका को बिना किसी विचार के विजयी घोषित कर देते हैं। नाटक के अन्त में मालविका की राजसी पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में ज्ञात होने पर धारिणी स्वयं मालविका और अग्निमित्र का विवाह करवा देती है।

संगठन एवं कथा-संयोजन

प्रथम अङ्क

नाटक के प्रारम्भ में रानी धारिणी मालविका को राजा की दृष्टि से छिपाये रखना चाहती हैं। रानी धारिणी की आज्ञा से मालविका के नृत्य और गायन की शिक्षा की प्रगति के संबंध में नाट्याचार्य गणदास से जानकारी करने के लिए जा

रही वकुलावलिका की भेंट कौमुदिनी से हो जाती है, जो रानी के लिए सांकित अँगूठी लेकर स्वर्णकार के यहाँ से लौट रही थी। उन दोनों की वार्ता से ज्ञात होता है कि मालविका के सौन्दर्य के कारण रानी धारिणी उसे राजा अग्निमित्र की दृष्टि से दूर रखना चाहती है। परन्तु एक दिन चित्रशाला में चित्र देखती हुई महादेवी के निकट उपस्थित होकर राजा मालविका का चित्र देख लेता है, और उसके बारे में पूछने पर वसुलक्ष्मी बालभाव से कह देती हैं कि यह मालविका है। मालविका को देखकर राजा उसके सौंदर्य पर मोहित हो गया। कौमुदिनी धारिणी के पास चली जाती है और वकुलावलिका गणदास के पास, गणदास मालविका की निपुणता और गृहणशक्ति की प्रशंसा करता है। इसी को देवी अपने विश्वासपात्र नाट्याचार्य गणदास के पास संगीत नृत्य की शिक्षा के लिए रख छोड़ती है और मालूम होता है कि वह बड़ी कुशलता से नृत्य की प्रायोगिक शिक्षा ग्रहण कर रही है।

इस मिश्रविष्कम्भक के बाद दूसरे दृश्य में राजा अग्निमित्र पत्र लेख लिए हुए मन्त्री के साथ दिखाई पड़ता है। उनके सम्भाषणों से ज्ञात होता है कि पहले राजा ने विदर्भ शासक को पत्र दिया था उसके प्रत्युत्तर में ही यह लेख आया है अमात्य वाहतक बतलाता है कि वैदर्भ अपना विनाश चाहता है पत्र से ज्ञात होता है कि अग्निमित्र से माधवसेन की मित्रता है तथा वह प्रतिश्रुत सम्बन्धी है। माधवसेन अपनी कुमारी बहिन को देने का वचन दे चुका है इसी अपने पितृव्य पुत्र भाई माधवसेन को अग्निमित्र के पास विदिशा जाते हुए रास्ते में ही यज्ञसेन के अंतपाल ने बहिन तथा स्त्री सहित पकड़ लिया उसी की मुक्ति के लिए अग्निमित्र के विदर्भ शासक को संदेश देने पर वह प्रत्युत्तर में अभिसंधि के रूप में अपने साले मौर्य सचिव को छोड़ने को लिखता है।

मौर्यसचिव विमुंचति यदि पूज्यः संयतं मम श्यालम्।
भोक्तामाधवसेनं ततोऽहमपि बन्धनात्सद्यः।

अग्निमित्र कार्य विनिमय की इस अभिसंधि से रुष्ट होकर विदर्भ के समूलोन्मूलन के लिए आज्ञा देता है। अमात्य भी राजा के वक्तव्य का शास्त्र द्वारा समर्थन करता है। फलतः उसने अपने साले धारिणी के भाई को विदर्भ देश पर आक्रमण करके शत्रु को पराजित करने के लिए भेज दिया। दूसरी ओर अमात्य के निष्क्रमण के पश्चात कार्यान्तर (नर्म) सचिव विदूषक, जिसकी प्रतीक्षा राजा बड़ी उत्सुकता से कर रहा है प्रवेश करता है। इसके बाद राजा विदूषक से मालविका विषयक अपनी काम पीड़ा को कहता है और कोई उपाय ढूंढने का

उपाय करता हैं। उसके द्वारा ज्ञात होता है कि राजा से चित्र में देखी मालविका के प्रत्यक्ष दर्शन के उपाय को भेजा है और अब उसका उपाय भी कर दिया गया है। तभी गणदास तथा हरिदत्त दोनों तू-तू मैं-मैं करते हुए प्रवेश करते हैं। यही विदूषक का कूटनीति प्रयोग विस्तार पाता है। दोनों नाट्याचार्य एक-दूसरे को विद्या आदि में हेय समझते हैं परस्पर निन्दा करते हैं और राजा से ही प्राश्चिक के रूप में इसका निर्णय चाहते हैं कि दोनों में शास्त्र तथा प्रयोग ज्ञान में श्रेष्ठ कौन है।

लब्धास्पदोऽस्माति विवादभीरोस्तिति क्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिज वदन्ति।

पर इस विवाद के विषय में रानी के सम्भावित पक्षपात के सन्देह से आशंकित होकर राजा भगवती कौशिकी तथा रानी के समक्ष ही विवाद के निर्णय को न्याय समक्ष दोनों को बुला भेजते हैं। यही ज्ञात होता है कि महाराज का पक्षपात हरदत्त की ओर है और महारानी का गणदास की ओर। अतः तटस्थ कोशिकी को ही सर्वसम्मत रूप से मध्यस्थ बनाया जाता है, क्योंकि नाट्य निर्णय प्रयोग द्वारा ही सम्भव है। अतः महारानी की अनिच्छा होने पर भी आचार्यों के शिष्यों को नाट्य प्रदर्शन की आज्ञा दे दी जाती है और दोनों नाट्याचार्यों की शिष्याओं को नृत्य कला प्रदर्शन के आधार पर ही उनकी वरिष्ठता निर्धारित करने का निश्चय किया गया।

द्वितीय अङ्क

रंगशाला में वयोवृद्ध होने के कारण गणदास को सर्वप्रथम अपनी शिष्या मालविका के नृत्य प्रदर्शन का अवसर प्रदान किया गया मालविका के दर्शन के लिए राजा पूर्व से ही अधीर थे और जब साक्षात राजा ने मालिविका को देखा तो मन्त्रमुग्ध हो उसके सौन्दर्य को देखता ही रहा। राजा महारानी परिव्राजिका एवं विदूषक रंगशाला में मालविका का नृत्य देखते हैं। पारिव्रजिका के आदेशानुसार मालविका चलित नृत्य प्रस्तुत करती है उसका नृत्य और गीत राजा को और व्यथित कर देता है। मालविका के उत्कृष्ट नृत्य के कारण प्राश्निक परिव्रजिका गणदास के पक्ष में निर्णय देती है हरदत्त की शिष्या का नृत्य प्रदर्शन उस समय नहीं कराया जा सका क्योंकि दोपहर के भोजन का समय हो गया था। प्रदर्शन के बाद धारिणी मालविका को राजा के सामने से शीघ्र दूर करने को आतुर दीख पड़ती थी। यही मालविका के प्रति राजा का पूर्वानुराग अभिव्यक्त होता है।

सर्वान्तः पुरवनिताव्यापार प्रतिनिवृत्त हृदयस्य।
सा वामलोचना में स्नेहस्यैकामनीभूता।

राजा का मन बहुत अशान्त था उसने विदूषक से बहुत शीघ्र ऐसा कोई उपाय ढूंढने के लिए कहा, जिससे उसका मालविका से मिलन हो सके। विदूषक ने बड़ी निपुणता के साथ बकुलावलिका को विश्वास में लेकर उससे मालविका के हृदय में राजा के प्रति प्रेम बीज बोने के लिए कहा।

तृतीय अङ्क

तृतीय अङ्क के आरम्भ में प्रवेशक में मधुकरिका और समाहितिका यह संकेत देती है कि यद्यपि मालविका बहुत प्रशंसित हो चुकी है तब भी आजकल परिम्लान सी दीख पड़ती है तथा स्वामी भी उसके प्रति साभिलाष है, केवल धारिणी ही उसकी रक्षा कर रही है। अन्त:पुर के प्रमदवन में स्थित तपनीय अशोक के दोहद के लिए किसी तरूणी को पाद प्रहार करना था और यह कार्य महारानी धारिणी द्वारा ही सम्पन्न किया जाना था, किन्तु आकस्मिक पैर की चोट के कारण धारिणी ने इस कार्य के लिए मालविका को नियुक्त कर दिया और उसे ही प्रमदवन में जाने की अनुमति प्रदान की और यह वचन भी दिया कि यदि पाँच दिन में अशोक के पुष्प पुष्पित हो जायेंगे तो मालविका का मनोरथ पूर्ण कर देगी।

उधर राजा को दूसरी रानी इरावती के साथ झूला झूलने के लिए प्रमदवन में जाना था। अन्यमनस्क राजा विदूषक के आग्रह पर प्रमदवन आ जाता है और मालविका में मन रमा होने पर भी छोटी रानी इरावती के संदेशानुसार प्रमदवन में उपस्थित होता है वहां राना इरावती की प्रतीक्षा कर ही रहा है कि वहां उसे वकुलावलिका और मालविका, जो अशोक के दोहद के लिए आयी थीं दिखाई पड़ जाती हैं। यहीं विदूषक द्वारा राजा को ज्ञात होता है कि यद्यपि सम्पत्ति पर साँप के समान ही रानी मालविका पर निगाह रखती है तब भी वकुलावलिका आदि उसे राजा से मिलाने को प्रयत्नशील है और आज मालविका को राजा से मिलने का अवसर मिलता है। वहां उसे वकुलावलिका और मालविका, जो अशोक के दोहद के लिए आयी दिखाई पड़ जाती हैं पर तभी इरावती की चेटी निपुणिका के साथ प्रवेश कर दोनों मिल ही पाते हैं कि दूसरी ओर मदमस्त इरावती भी अपनी सेविका निपुणिका के साथ प्रमदवन में आ जाती है। राजा और

इरावती दोनों ही अलग-अलग मालविका और वकुलावलिका की राजा के प्रति प्रेम की गुप्त बातें सुनते हैं। मालविका और वकुलावलिका की वार्ता से राजा विषयक प्रेम मालविका प्रकट करती है अपने पर प्रेम की वार्ता को सुन राजा अत्यन्त ही प्रसन्न हो जाता है कि जितना वे मालविका के लिए अधीर हैं उतना ही मालविका भी उसके प्रेम में आतुर है। ऐसा सुनकर राजा तो प्रेम में प्रफुल्लित होता है, किन्तु उधर रानी इरावती अत्यन्त ही रुष्ट हो जाती है और कटु शब्द सुनाती है। रक्तरजित पैर से मालविका द्वारा अशोक पर पाद प्रहार करते देख कर विदूषक कहता है कि क्या महाराज के मित्र स्वरूप अशोक वृक्ष पर आपके द्वारा पैर से प्रहार करना ठीक रहेगा? तब वकुलावलिका बताती है कि महारानी की आज्ञा से ही यह कार्य सम्पन्न करने यहाँ आई है। राजा आज्ञा दे देते हैं और कहते है कि अपने बायें पैर में पाद प्रहार में कोई कष्ट न हो। तब मालविका राजा के पैर को छूकर क्षमा माँगती है दोनों का स्पर्श होता है। राजा के द्वारा मालविका से अपना प्रेम प्रकट करने के समय ही वहां इरावती पहुँच जाती है। सम्भ्रमपूर्वक राजा इरावती से कहता है कि में तुम्हें दूढता रहा किन्तु तुम्हारे न आने पर ही मन बहलाने के लिए इधर चला आया। यहाँ पर इरावती की सपत्नीजन्य ईर्ष्या भड़क उठी। वह राजा को व्यंग्य वाणों से भेदन करती है और वकुलावलिका को फटकारते हुए वहां से जाने लगती है। राजा अग्निमित्र इरावती के चरणों में अपनी पगड़ी रख क्षमा प्रार्थना करते हैं व उसके पाँव पकड़ लेते हैं, किन्तु वह नहीं मानती है और क्रोध के वशीभूत होकर वहाँ से चली जाती है। विदूषक राजा से कहता है कि इरावती यहाँ से मंगल ग्रह के समान वापस चली गयी है अतएव अब आप भी चलिए। राजा भी विचार करता हैं कि जब रानी उसका अनादर कर सकती है तो में भी उसकी उपेक्षा कर सकता हूँ।

मन्ये प्रियाहृतमनास्तस्याः प्रणिपातलङ्घनं सेवाम्।
एवं प्रणयवती सा मयि शक्यमुपेक्षितुं कुपिता।

और ऐसा विचार कर वह अपना ध्यान मालविका पर आसक्त करता है। उसके पश्चात सभी वहां से चले जाते हैं। उधर इरावती ईष्या से जली हुई सीधे जाकर रानी धारिणी को मालविका और वकुलावलिका के विरूद्ध भड़का देती है। धारिणी ने दोनों को कारागृह में डाल दिया और विश्वस्त परिचारिका को कार्य पर लगा दी कि उसकी सर्प चिह्न वाली अंगूठी देखे बिना उन दोनों को मुक्त न किया जाये।

चतुर्थ अङ्क

मालविका के प्रेम में आसक्त और उसी के विषय में चिंतातुर राजा अन्ततः अपने हृदय की मनोव्यथा विदूषक से कहते हैं और मालविका विषयक कारावास का समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी हो उठते हैं और मालविका को किसी भी प्रकार से मुक्त कराने के लिए विदूषक से प्रार्थना करते हैं। विदूषक ने एक उपाय सोचकर राजा के कान में बता दिया और कहा कि आज रानी धारिणी का समाचार जानने के लिए वहां जाइये क्योंकि उनके पैर में चोट आ गयी थी। राजा रानी धारिणी की चोट देखने के लिए उनके कमरे में जाते हैं और विदूषक स्वयं केतकी के काटे से सर्पदंश का चिन्ह बना कर वहां पहँच गया, जहाँ पर राजा और रानी धारिणी बैठे थे और वहां बताया कि वो महारानी के लिए पुष्प तोड़ने गया था कि तभी सर्प ने काट लिया। ऐसा सुन रानी ब्रह्महत्या के भय से अत्यन्त चिंतित हुई। राजा ने चिकित्सा के लिए उसे राजवैद्य ध्रुवसिद्धि के पास भेज दिया। ध्रुवसिद्धि के नाम पर विदूषक के उपचार के बहाने रानी की सर्पमुद्रा को मंगवा लिया और उस सर्पमुद्रा को माधविका को दिखा कर मालविका और वकुलावलिका को मुक्त करा लिया। उधर राजा भी मन्त्री से वाहतक से राजकार्य सम्बन्धी परामर्श करने के बहाने से रानी के पास से उठ बाहर चले आते हैं। पूर्व संकेतानुसार राजा, विदूषक मालविका और वकुलावलिका सभी समुद्रगृह में एकत्र होते हैं। राजा और मालविका को एकांत में वार्तालाप के लिए छोड़ कर वकुलावलिका वहीं छिप जाती है और विदूषक बाहर दरवाजे पर पहरा देने लगता है पहरा देते देते वही निद्रालु हो जाता है और स्वप्न में मालविका को राजा के सानिध्य में पाता है। राजा मालविका को बिल्कुल अपने सानिध्य में लिए हुए है–

विसृज सुन्दरि संङ्गमसाध्वसं, तव चिरात् प्रभृति प्रणयोन्मुखे।
परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुक्त लताचरितं मयि।

और विदूषक सपने में बड़बड़ाता है–मालविका राजप्रिया बनो इरावती को राजप्रणय में जीत लो। इतने में वहां इरावती और निपुणिका आ जाती हैं स्वप्न में मालविका को इरावती से बढ़ने वाली बात को सुनकर कुपित होती हैं और विदूषक के उपर टेड़े-मेढ़े लकड़ी के डंडे से खम्भे के द्वारा उसको डराती हैं जिससे कि सांप-सांप चिल्लाने लगता है। विदूषक का शोर सुनकर राजा उसकी सहायता के लिए बाहर आता है। मालविका रोकती है कि अचानक बाहर मत निकलिए वहां सांप है। इरावती एकाएक राजा के पास जाकर कहती है कि आज दोनों का दिवाभसार हो गया क्या? सभी इरावती को वहाँ देखकर घबरा जाते हैं।

इस प्रकार सब कुछ देखकर इरावती अत्यन्त क्रुद्ध हो जाती है। राजा इरावती को बहुत समझाता है कि

नार्हति कृतापराधोऽप्युत्सवदिवसेषु परिजनो बन्धुम्।
इति मोचिते मयैते प्रणिपतितुं मामुपगते च।

किन्तु इरावती न मानी और अपनी परिचारिका से रानी धारिणी के पास संदेश भेज दिया कि आपका पक्षपात देखकर मुझे विश्वास हो गया कि आपकी सहायता से ही इन दोनों का मिलाप हुआ है। उसी प्रकार एक दासी ने आकर समाचार दिया कि कुमारी वसुलक्ष्मी को बन्दर ने डरा दिया है, जिससे वह रोना बन्द ही नहीं कर रही है। मालविका और वकुलावलिका को छोड़कर सभी चले जाते हैं। तभी मधुरिका (मालिनी) आकर बताती है कि अशोक पाँच रातों के भीतर ही पुष्पित हो उठा है प्रसन्न मालविका वकुलावलिका के साथ रानी धारिणी को यह समाचार देने तथा अपना पारितोषिक प्राप्त करने चली जाती है।

पंचम अङ्क

राजा को धारिणी का यह संदेश मिलता है कि अशोक वृक्ष से पुष्प पुष्पित हो चुके है। अतः वे रक्त शोक के पास पहुँचे वहां उनकी प्रतीक्षा कर रही है। उधर राजा के पास यह भी समाचार आता है कि उनकी सेना ने विदर्भ नरेश यज्ञसेन को परास्त कर माधवसेन को मुक्त करा लिया है।

परभृत कलव्याहारेषु त्वमात्तरतिर्मधु, नयसि, विदिशातीराद्यानेष्वङ्ग इवाङ्ग।
विजयकारिणामालानत्वं गतः प्रबलस्य ते, वरद!वरदारोधोवृक्षैः सहावनतो रिपुः।

राजा और विदूषक रक्ताशोक देखने प्रमदवन जाते हैं। मालविका वहां वैवाहिक वेष में सजी हुई है व रानी के बिल्कुल समीप खड़ी है। साथ ही में परिब्राजिका कौशिकी तथा परिजनों से युक्त धारिणी राजा के दर्शन के लिए आतुर है। उसी समय राजा अग्निमित्र के पिता पुष्यमित्र का भेजा हुआ दूत वहां आया, जिसने बताया कि राजकुमार वसुमित्र (अग्निमित्र का पुत्र) ने यज्ञाश्व की बड़ी बहादुरी से रक्षा कर ली है। राजा ने धारिणी की प्रशंसा में कहा की आपके पुत्र विजयी होकर वापस लौटे हैं अतएव आप वीरमाता के नाम से जानी जाओगी। यह समाचार सुनकर सभी बहुत प्रसन्न हुए। धारिणी ये समाचार इरावती को भी बताने को कहती है तदन्तर वो राजा से कहती है कि आपने मुझे प्रिय समाचार

सुनाया है अतः आप तदनुरूप पारितोषिक स्वीकार करें। उसके पश्चात उसी समय उपहार में भेजी गई दो शिल्प कन्याएं वहाँ उपस्थित की गईं, जिनमें से एक ने मालविका को पहचान लिया और कहा कि यह तो राजकुमारी है उन कन्याओं ने परिव्राजिका को भी पहचान लिया। यह सब देखकर राजा आश्चर्य चकित हुए और सविस्तार जानने की इच्छा प्रकट की। उन कन्याओं ने तथा परिव्राजिका ने पूरी घटना को विस्तार से राजा को बताया।

अप्याकरसमुत्पन्ना मणिजातिरसंस्कृता।
जातपेरूण कल्याणि! न हि संयोगमर्हति।

मालविका और अपने अज्ञातवास के औचित्य को सिद्ध करती हुई परिव्राजिका ने बताया कि जिस समय मालविका के पिता जीवित थे उसी समय एक सिद्ध पुरुष ने बताया था कि मालविका एक वर्ष तक दासी का काम करने के बाद योग्य पति प्राप्त कर सकेगी। इसलिए मालविका को दासी के रूप में रहते देखकर वह चुप थी। वास्तविकता की जानकारी हो जाने पर उसे दासी कर्म कहीं और करना पड़ता जो उचित नहीं था। इसके पश्चात रानी धारिणी, इरावती की तथा परिव्राजिका, कौशिकी की अनुमति लेकर मालविका का विवाह राजा से करा देती हैं।

12

सूर्यसिद्धान्त

सूर्यसिद्धान्त भारतीय खगोलशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कई सिद्धान्त-ग्रन्थों के समूह का नाम है। वर्तमान समय में उपलब्ध ग्रन्थ मध्ययुग में रचित ग्रन्थ लगता है, किन्तु अवश्य ही यह ग्रन्थ पुराने संस्करणों पर आधारित है, जो 6ठी शताब्दी के आरम्भिक चरण में रचित हुए माने जाते हैं।

भारतीय गणितज्ञ Lalit verma और खगोलशास्त्रियों ने इसका सन्दर्भ भी लिया है, जैसे–आर्यभट्ट और वाराहमिहिर, आदि। वाराहमिहिर ने अपने पंचसिद्धांतिका में चार अन्य टीकाओं सहित इसका उल्लेख किया है, जो हैं–

पैतामाह सिद्धान्त, (जो कि परम्परागत वेदांग ज्योतिष से अधिक समान है),

पौलिष सिद्धान्त

रोमक सिद्धान्त (जो यूनानी खगोलशास्त्र के समान है) और

वशिष्ठ सिद्धान्त

सूर्य सिद्धान्त नामक वर्णित कार्य, कई बार ढाला गया है। इसके प्राचीनतम उल्लेख बौद्ध काल (तीसरी शताब्दी, ई.पू) के मिलते हैं। वह कार्य, संरक्षित करके और सम्पादित किया हुआ (बर्गस द्वारा 1858 में) मध्य काल को संकेत करता है। वाराहमिहिर का दसवीं शताब्दी के एक टीकाकार, ने सूर्य सिद्धांत से

छः श्लोकों का उद्धरण किया है, जिनमें से एक भी अब इस सिद्धांत में नहीं मिलता है। वर्तमान सूर्य सिद्धांत को तब वाराहमिहिर को उपलब्ध पाठ्य का सीधा वंशज माना जा सकता है। इस लेख में बर्गस द्वारा सम्पादित किया गया संस्करण ही मिल पायेगा। गुप्त काल के जो साक्ष्य हैं, उन्हें पठन करने हेतु देखें पंचसिद्धांतिका।

इसमें वे नियम दिये गये हैं, जिनके द्वारा ब्रह्माण्डीय पिण्डों की गति को उनकी वास्तविक स्थिति सहित जाना जा सकता है। यह विभिन्न तारों की स्थितियां, चांद्रीय नक्षत्रों के सिवाय, की स्थिति का भी ज्ञान कराता है। इसके द्वारा सूर्य ग्रहण का आकलन भी किया जा सकता है।

वर्ण्य विषय

सूर्य सिद्धान्त में खगोलीय समय चक्रों का विस्तृत वर्णन है।

खगोलशास्त्र

इस ग्रन्थ में विषयों की सूची निम्न है–

- ग्रहों की चाल,
- ग्रहों की स्थिति,
- दिशा, स्थान और समय,
- चंद्रमा और ग्रहण,
- सूर्य और ग्रहण,
- ग्रहणों का पूर्व अनुमानध आकलन,
- ग्रहीय संयोग,
- तारों के बारे में,
- उनका उदय और अस्त,
- चंद्रमा का उदय और अस्त,
- सूर्य और चंद्रमा के एकई अहितकर पक्ष,
- विश्वोत्पत्ति/ब्रह्माण्ड सृजन, भूगोल और सृजन के आयाम,
- सूर्य घड़ी का दण्ड,
- लोकों की गति और मानवीय क्रिया-कलाप,
- सौर घड़ी द्वारा समय मापन के शुद्ध तरीके अध्याय 3 और 13 में वर्णित हैं।

ग्रहों की चाल

भगण

- 12 राशियों का एक भगण होता है।
- 60 विकला की एक कला।
- 60 कला का-1 अंश।
- 30 अंश को-1 राशी।
- शीघ्र गति वाले ग्रह अल्पकाल में तथा मंद गतिवाले अधिक काल में 27 नक्षत्र का भोग करते हैं।
- अश्विनी नक्षत्र सें भ्रमण करते हुये रेवती नक्षत्र तक ग्रहों का भगण पूरा होता है।
- पुर्वाभिमुख गमन करने वाले सुर्य-बुध और शुक्र और मंगल शनि और गुरू की भगण संख्या 4320000 होती है।
- एक महायुग में चंद्रमा कि भगण संख्या–57753336,
- एक महायुग में मंगल कि भगण संख्या–2296832,
- एक महायुग में बुध कि भगण संख्या–17937060,
- एक महायुग में गुरु कि भगण संख्या–364220
- एक महायुग में शुक्र कि भगण संख्या–7022376
- एक महायुग में शनि कि भगण संख्या–146568
- चंद्र कि भगण संख्या–488203
- राहु-केतु कि विपरीत गति से भगणों की–232236
- संख्या होती है।
- एक महायुग में नक्षत्रों कि भगण संख्या–1582237828
- होती है।
- नक्षत्र भगण में से ग्रहों के अपने-अपने भगण घटाने पर शेष ग्रहों के सावन दिन होते है
- एक महायुग में सूर्य और चंद्रमा के भगणों के अंतर के
- समान चांद्रमास होते हैं।
- युग चांद्रमास से युग सूर्य मास घटाने पर अधिमास मिलता है।
- एक महायुग में 1577917828 सावन दिन होते है।
- 1603000080 तिथियाँ होती है।

- 1593336 आधिमास होते है।
- 25082252 क्षय दिन होते है।
- 51840000 सौर मास होते है।
- नक्षत्र भगण से सौर भगण घटाने पर सावन होता है।

समय चक्र

इस ग्रंथ में वर्णित समय-चक्र विलक्षण रूप से विशुद्ध थे। हिन्दू ब्रह्माण्डीय समय चक्र सूर्य सिद्धांत के पहले अध्याय के श्लोक 11-23 में आते हैं।–

(श्लोक 11) वह जो कि श्वास (प्राण) से आरम्भ होता है, यथार्थ कहलाता है, और वह जो त्रुटि से आरम्भ होता है, अवास्तविक कहलाता है। छः श्वास से एक विनाड़ी बनती है। साठ श्वासों से एक नाड़ी बनती है।"

(श्लोक 12) और साठ नाड़ियों से एक दिवस (दिन और रात्रि) बनते हैं। तीस दिवसों से एक मास (महीना) बनता है। एक नागरिक (सावन) मास सूर्योदयों की संख्याओं के बराबर होता है।

(श्लोक 13) एक चंद्र मास, उतनी चंद्र तिथियों से बनता है। एक सौर मास सूर्य के राशि में प्रवेश से निश्चित होता है। बारह मास एक वरस बनाते हैं। एक वरस को देवताओं का एक दिवस कहते हैं।

(श्लोक 14) देवताओं और दैत्यों के दिन और रात्रि पारस्परिक उलटे होते हैं। उनके छः गुणा साठ देवताओं के (दिव्य) वर्ष होते हैं। ऐसे ही दैत्यों के भी होते हैं।

(श्लोक 15) बारह सहस्र (हजार) दिव्य वर्षों को एक चतुर्युग कहते हैं। एक चतुर्युग तिरालीस लाख बीस हजार सौर वर्षों का होता है।

(श्लोक 16) चतुर्युगी की उषा और संध्या काल होते हैं। कतयुग या सतयुग और अन्य युगों का अन्तर, जैसे–मापा जाता है, वह इस प्रकार है, जो कि चरणों में होता है–

(श्लोक 17) एक चतुर्युगी का दशांश को क्रमशः चार, तीन, दो और एक से गुणा करने पर कतयुग और अन्य युगों की अवधि मिलती है। इन सभी का छठा भाग इनकी उषा और संध्या होता है।

(श्लोक 18) इकहत्तर चतुर्युगी एक मन्वन्तर या एक मनु की आयु होते हैं। इसके अन्त पर संध्या होती है, जिसकी अवधि एक सतयुग के बराबर होती है और यह प्रलय होती है।

(श्लोक 19) एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं, अपनी संध्याओं के साथ, प्रत्येक कल्प के आरम्भ में पंद्रहवीं संध्या उषा होती है। यह भी सतयुग के बराबर ही होती है।

(श्लोक 20) एक कल्प में, एक हजार चतुर्युगी होते हैं और फिर एक प्रलय होती है। यह ब्रह्मा का एक दिन होता है। इसके बाद इतनी ही लम्बी रात्रि भी होती है।

(श्लोक 21) इस दिन और रात्रि के आकलन से उनकी आयु एक सौ वर्ष होती है, उनकी आधी आयु निकल चुकी है और शेष में से यह प्रथम कल्प है।

(श्लोक 22) इस कल्प में, छः मनु अपनी संध्याओं समेत निकल चुके, अब सातवें मनु (वैवस्वतः विवस्वान (सूर्य) के पुत्र) का चतुर्युगी बीत चुका है।

(श्लोक 23) वर्तमान में, अट्ठाईसवां चतुर्युगी का कतयुग बीत चुका है।

इस खगोलीय समय चक्र का आकलन करने पर, निम्न परिणाम मिलते हैं

उष्णकटिबनधीय वर्ष की औसत लम्बाई है 365.2421756 दिवस, जो कि आधुनिक आकलन से केवल 1.4 सैकण्ड ही छोटी है। (2000) यह उष्णकटिबन्धीय वर्ष का सर्वाधिक विशुद्ध आकलन रहा कम से कम अगली छः शताब्दियों तक, जब मुस्लिम गणितज्ञ उमर खय्याम ने एक बेहतर अनुमान दिया। फिर भी यह आकलन अभी भी विश्व में प्रचलित ग्रेगोरियन वर्ष के मापन से अति शुद्ध ही है, जो कि वर्ष की अवधि केवल 365.2425 दिवस ही बताता है, यथार्थ 365.2421756 दिवस के स्थान पर।

एक नक्षत्रीय वर्ष की औसत अवधि, पृथ्वी के द्वारा, सूर्य की परिक्रमा में लगे समय अवधि 365.2563627 दिवस होती है, जो कि आधुनिक मान 365. 25636305 दिवस (2000) के एकदम बराबर ही है। यह नक्षत्रीय वर्ष का सर्वाधिक परिशुद्ध कलन यहां सहस्रों वर्ष तक.

नक्षत्रीय वर्ष का दिया गया यथार्थ मान, वैसे उतना शुद्ध नहीं है। इसका मान 365.258756 दिवस दिया गया है, जो कि आधुनिक मान से 3 मिनट और 27 सैकण्ड कम है। यह इसलिये है, क्योंकि लेखक, या सम्पादक ने बाद में किये गये कलनों में हिन्दू ब्रह्माण्डीय समय चक्र की गणना से थोड़ा भिन्न हो कर यहां गणना की है। उसने शायद समय चक्र के जटिल गणना के आकलन

को सही समझा नहीं है। सम्पादक ने सूर्य की औसत गति और समान परिशुद्धता का प्रयोग किया है, जो कि हिन्दू ब्रह्माण्डीय समय चक्र के आकलन से निम्न स्तर का है।

पृथ्वी गोल है

सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानम् उपरि स्थितम्।

मन्यन्ते खे यतो गोलस् तस्य क्वोर्धवम् क्व वाधः (सूर्यसिद्धान्त 12.53)

अनुवाद–अनुवाद स्कॉट एल मॉण्टगोमरी, आलोक कुमार) इस गोलाकार धरती पर लोग अपने स्थान को सबसे ऊपर मानते हैं। किन्तु यह गोला तो आकाश में स्थित है, उसका उर्ध्व (ऊपर) क्या और नीचे क्या?

ग्रहों के व्यास

सूर्य सिद्धान्त में ग्रहों के व्यास की गणना भी की गयी है। बुध का व्यास 3008 मील दिया गया है, जो आधुनिक स्वीकृत मान (3032 मील) से केवल 1% कम है। इसके अलावा शनि, मंगल, शुक्र और बृहस्पति के व्यास की गणना भी की गयी है। शनि का व्यास 73882 मील बताया गया है, जो केवल 1% अशुद्ध है। मंगल का व्यास 3772 मील बताया गया है, जो लगभग 11% अशुद्ध है। शुक्र का व्यास 4011 मील तथा बृहस्पति का व्यास 41624 मील बताया गया है, जो वर्तमान स्वीकृत मानों के लगभग आधे हैं।

त्रिकोणमिति

सूर्यसिद्धान्त आधुनिक त्रिकोणमिति का मूल है। सूर्यसिद्धान्त में वर्णित ज्या और कोटिज्या फलनों से ही आधुनिक साइन (sine) और कोसाइन (Cosine) नाम व्युत्पन्न हुए हैं (जो भारत से अरब-जगत होते हुए यूरोप पहुँचे)। इतना ही नहीं, सूर्य सिद्धान्त के तृतीय अध्याय (त्रिप्रश्नाधिकारः) में ही सबसे पहले स्पर्शज्या (Tangent) और व्युकोज्या (Secant) का प्रयोग हुआ है। निम्नलिखित श्लोकों में शंकुक द्वारा निर्मित छाया का वर्णन करते हुए इनका उपयोग हुआ है–

शेषम् नताम्शाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिज्या।
शंकुमानांगुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम्। 3.21।
कोटिज्यया विभज्याप्ते छायाकर्णाव् अहर्दले।
क्रान्तिज्या विषुवत्कर्णगुणाप्ता शंकुजीवया।। 3.22।

कैलेण्डरीय प्रयोग

1871-72 ई का हिन्दू पंचाङ्ग

भारत के विभिन्न भागों में भारतीय सौर पंचांग तथा चन्द्र-सौर पंचांग प्रयुक्त होते हैं। इनके आधार पर ही विभिन्न त्यौहार, मेले, क्रियाकर्म होते हैं। भारत में प्रचलित आधुनिक सौर तथा चान्द्रसौर पंचांग, सूर्य के विभिन्न राशियों में प्रवेश के समय पर ही आधारित हैं।

परम्परागत पंचांगकार, आज भी सूर्यसिद्धान्त में निहित सूत्रों और समीकरणों का ही प्रयोग करके अपने पंचांग का निर्माण करते हैं। भारतीयों के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन पर पंचांग का बहुत अधिक प्रभाव है तथा अधिकांश घरों में पंचांग रखने की प्रथा है।

यंत्र

पारदाराम्बुसूत्रणि शुल्वतैलजलानि च।
बीजानि पांसवस्तेषु प्रयोगास्तेऽपि दुर्लभाः 13.22।

अर्थ–ताड़ियों (spokes) में पारद भरा हुआ, जल, धागा (सूत्र), रस्सी, तेल और जल आदि से ये यंत्र बनाये जाते हैं। इसके अलावा बीज और महीन रेत भी इन यंत्रों में प्रयुक्त होती हैं। ये यन्त्र दुर्लभ हैं।

13

गीतगोविन्द

गीतगोविन्द जयदेव की काव्य रचना है। गीतगोविन्द में श्रीकृष्ण की गोपिकाओं के साथ रासलीला, राधाविषाद वर्णन, कृष्ण के लिए व्याकुलता, उपालम्भ वचन, कृष्ण की राधा के लिए उत्कंठा, राधा की सखी द्वारा राधा के विरह संताप का वर्णन है। जयदेव का जन्म ओडिशा में भुवनेश्वर के पास केन्दुबिल्व नामक ग्राम में हुआ था। वे बंगाल के सेनवंश के अन्तिम नरेश लक्ष्मणसेन के आश्रित महाकवि थे। लक्ष्मणसेन के एक शिलालेख पर 1116 ई. की तिथि है अत: जयदेव ने इसी समय में गीतगोविन्द की रचना की होगी।

'श्री गीतगोविन्द' साहित्य जगत में एक अनुपम कृति है। इसकी मनोरम रचना शैली, भावप्रवणता, सुमधुर राग-रागिणी, धार्मिक तात्पर्यता तथा सुमधुर कोमल-कान्त-पदावली साहित्यिक रस पिपासुओं को अपूर्व आनन्द प्रदान करती हैं। अत: डॉ. ए. बी. कीथ ने अपने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में इसे 'अप्रतिम काव्य' माना है। सन् 1784 में विलियम जोन्स द्वारा लिखित (1799 में प्रकाशित) 'ऑन द म्यूजिकल मोड्स ऑफ द हिन्दूज' (एसियाटिक रिसर्चेज, खंड-3) पुस्तक में गीतगोविन्द को 'पास्टोरल ड्रामा' अर्थात् 'गोपनाट्य' के रूप में माना गया है। उसके बाद सन् 1837 में फ्रेंच विद्वान् एडविन आरनोल्ड तार्सन ने इसे 'लिरिकल ड्रामा' या 'गीतिनाट्य' कहा है। वान श्रोडर ने 'यात्रा प्रबन्ध' तथा पिशाल लेवी ने 'मेलो ड्रामा', इन्साइक्लोपिडिया ब्रिटानिका (खण्ड-5) में गीतगोविन्द को 'धर्मनाटक' कहा गया है। इसी तरह अनेक विद्वानों ने अपने-अपने

ढंग से इसके सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया है। जर्मन कवि गेटे महोदय ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् और मेघदूतम् के समान ही गीतगोविन्द की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

गीतगोविन्द काव्य में जयदेव ने जगदीश का ही जगन्नाथ, दशावतारी, हरि, मुरारी, मधुरिपु, केशव, माधव, कृष्ण इत्यादि नामों से उल्लेख किया है। यह 24 प्रबन्ध (12 सर्ग) तथा 72 श्लोकों (सर्वांगसुन्दरी टीका में 77 श्लोक) युक्त परिपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें राधा-कृष्ण के मिलन-विरह तथा पुनर्मिलन को कोमल तथा लालित्यपूर्ण पदों द्वारा बाँधा गया है। किन्तु नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थ सूची, भाग-इ' में गीतगोविन्द का 13वाँ सर्ग भी उपलब्ध है। परन्तु यह मातृका अर्वाचीन प्रतीत होती है।

गीतगोविन्द वैष्णव सम्प्रदाय में अत्यधिक आदृत है। अतः 13वीं शताब्दी के मध्य से ही श्री जगन्नाथ मन्दिर में इसे नित्य सेवा के रूप में अंगीकार किया जाता रहा है। इस गीतिकाव्य के प्रत्येक प्रबन्ध में कवि ने काव्यफल स्वरूप सुखद, यशस्वी, पुण्यरूप, मोक्षद आदि शब्दों का प्रयोग करके इसके धार्मिक तथा दार्शनिक काव्य होने का भी परिचय दिया है।शृंगार रस वर्णन में जयदेव कालिदास की परम्परा में आते हैं। गीतगोविन्द का रास वर्णन श्रीमद्भागवत के वर्णन से साम्य रखता है, तथा श्रीमद्भागवत के स्कन्ध 10, अध्याय 40 में (10-40-17/22) अक्रूर स्तुति में जो दशावतार का वर्णन है, गीतगोविन्द के प्रथम सर्ग के स्तुति वर्णन से साम्य रखता है।

आगे चलकर गीतगोविन्द के अनेक 'अनुकृति' काव्य रचे गये। अतः जयदेव ने स्वयं 12वें सर्ग में लिखा है -

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
यच्छृंगारविवेक तत्त्वरचना काव्येषु लीलायितम्।
तत्सर्वं जयदेव पण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः10।

कुम्भकर्ण प्रणीत 'रसिकप्रिया' टीका आदि में इसकी पुष्टि की गयी है।

टीकाएँ

गीतगोविन्द की लोकप्रियता और सौष्ठव के कारण भारत की प्रत्येक भाषा में गद्य और पद्य में तथा अँग्रेजी, लैटिन, फ्रेंच, जर्मन, अरबी, फारसी आदि भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया है। इसके अलावा संस्कृत भाषा में इसके

जो अनुवाद, भाष्य, टीका और टिप्पणी लिखे गये हैं, वैसा किसी अन्य भाषा में मिलना असम्भव है। किसी टीकाकार ने इसकाशृंगार प्रधान काव्य के रूप में वर्णन किया है तो किसी ने भक्ति सम्प्रदाय को महत्त्व देकर इसे भक्ति काव्य माना, तो किसी ने संगीत को प्रधानता देकर इसे संगीत शास्त्र का रूप दिया है एवं किसी-किसी टीकाकार ने शब्दमाधुर्य और सौष्ठव को लेकर इसकी शब्द व्युत्पत्यात्मक व्याख्या की है। इसलिए निस्संदेह गीतगोविन्द एक सर्वतन्त्र स्वतन्त्र ग्रन्थ है।

गीतगोविन्द के प्रथम टीकाकार उदयनाचार्य ने 'भावविभाविनी' टीका लिखी है। जगन्नाथ पुरी के अत्यन्त निकट प्राची के किनारे रहनेवाले उदयनाचार्य जदयदेव के प्रिय मित्र तथा प्रशंसक थे। सन् 1170 से 1198 के मध्य में 'भावविभाविनी' टीका लिखी गयी थी, जिसमें 100 श्लोक हैं। इसकी तीन मातृकाएँ उदयपुर और नागपुर में उपलब्ध हैं।

संरचना

'गीतगोविन्द' काव्य में बारह सर्ग हैं, जिनका चौबीस प्रबन्धों (खण्डों) में विभाजन हुआ है। इन प्रबन्धों का उपविभाजन पदों अथवा गीतों में हुआ है। प्रत्येक पद अथवा गीत में आठ पद्य हैं। गीतों के वक्ता कृष्ण, राधा अथवा राधा की सखी हैं। अत्यन्त नैराश्य और निरवधि-वियोग को छोड़कर भारतीय प्रेम के शेष सभी रूपों-अभिलाषा, ईर्ष्या, प्रत्याशा, निराशा, कोप, मान, पुनर्मिलन तथा हर्षोल्लास आदि—का बड़ी तन्मयता और कुशलता के साथ वर्णन किया गया है। प्रेम के इन सभी रूपों का वर्णन अत्यन्त रोचक, सरस और सजीव होने के अतिरिक्त इतना सुन्दर है कि ऐसा प्रतीत होता है, मानो कवि शास्त्र, अर्थात् चिन्तन (कामशास्त्र) को भावना का रूप अथवा अमूर्त को मूर्त रूप देकर उसे कविता में परिणित कर रहा है।

द्वादश सर्ग

(1) समोददामोदर,
(2) अक्लेशकेशव,
(3) मुग्ध मधुसूदन,
(4) स्निग्ध मधुसूदन,
(5) साकांक्ष पुण्डरीकाक्ष,

(6) कुण्ठबैकुण्ठ,
(7) नागरनारायण,
(8) बिलक्ष्यलक्ष्मीपति,
(9) मन्दमकुन्द,
(10) चतुर चतुर्भुज,
(11) सानन्द दामोदर,
(12) सुप्रीतिपीताम्बर।

परिचय

गीतगोविन्द 12वीं शतब्दी में लिखी गयी एक ऐसी काव्य रचना है, जो हमे भगवान कृष्ण और राधारानी के प्रेम के बारे में बताती है। इसमे कुल 12 अध्याय है। यह काव्य ओडिशा राज्य के भुवनेश्वर और पुरी शहर के मध्यवर्ती केन्दुबिल्व या केन्दुलि शासन नाम के गांव में वास करने वाले ब्राह्मण जयदेव कि कृति है। जयदेव ने उनकी पत्नी पाद्मावति की सहायता से इसको ऐसे रूपान्तर किया कि तत्कालीन उत्कल (ओडिशा का पूर्व नाम) के राजा इर्ष्या करने लगे। फिर जब गीतगोविन्द की प्राधान्य जगन्नाथ जी ने स्वप्न में राजा को बताया तब से मन्दिर के देवादासी रात के एकान्त सेवा और सुबह की सेवा में प्रभु जगन्नाथ के सामने ओडिशी नृत्य रूप में पेश करने लगे। पहलें विद्वानों क मानना था कि जयदेव बंगाल के राजा के सभाकवि हैं। पर शिलालेख एवं प्राचीन मन्दिर जो ओडिशा में मौजूद हैं, उनसे प्रमाणित हुआ कि जयदेव जगन्नाथ के भक्त थे और उत्कल राज्य के वासी थे। आज भी ओडिशी नृत्य के माध्यम से गीतगोविन्द सर्वजनीन प्रिय हो रहा है। ओडिशी नृत्य ही जयदेव का ओडिशा प्रान्त का होना सूचित करता है। उनकी गीतगोविन्द काव्य कि प्रचार पड़ोसी आन्ध्र, तमिलनाडु तथा कर्णाटक में हुआ। फिर उत्तरभारत में खासतौर पर राजस्थान में मीराबाई के द्वारा हुआ। गुरुग्रन्थ साहिब में भी भगत जयदेव का नाम लिख है, जो गीतगोविन्द के रचयिता हैं।

'गीतगोविन्द' काव्य का रचना-कौशल इस प्रकार सर्वथा नवीन एवं नितान्त मौलिक है कि उसके काव्य-रूप का निर्णय करना ही दुष्कर बन गया है। कुछ पाश्चात्य विद्वान् इसे 'ग्राम्य-रूपक' (Pastoral Drama) कहते हैं, तो अन्य समीक्षक इसे 'गीतिनाटक' (Lyric Drama) कहते हैं, तो कुछ अन्यों के मत में यह काव्य 'परिष्कृत यात्रा' (Refined yatra) है। पिशेल (Pichel)

इस काव्य को 'संगीत रूपक' (Melo Drama) स्वीकार करते हैं। लेवि (Levi) इसे गीत और रूपक का मध्यवर्ती अथवा समन्वित रूप (In Between Song and Drama) मानते हैं, परन्तु जयदेव ने अपनी इस कृति का सर्गों में विभाजन करके इसे नाटक के स्थान पर काव्य मानने की अपनी धारणा की ओर ही संकेत किया है। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस काव्य में नाटक की भांति अंक, प्रस्तावना आदि कुछ भी नहीं है। कुछ विद्वान् इसे 'शृंगार महाकाव्य' की संज्ञा भी देते हैं।

कृष्णास्वामी अयंगार ने अपने ग्रन्थ 'अ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन ओपेरा' (A History of Indian Opera) में 'गीतगोविन्द' काव्य को संगीतनाटक (Opera) का एक पूर्वरूप माना है और उसका विकास एवं उत्कृष्ट परिपाक सोलहवीं शताब्दी के श्री तीर्थनारायण स्वामी की रचना 'कृष्णलीला तरंगिणी' में स्वीकार किया है। इस संबंध में आचार्य बलदेव उपाध्याय का अनुमान पर आधारित कथन है कि 'गीतगोविन्द' के पदों के साथ (संगीत और नृत्य सम्बन्धी) रागों और तालों के दिये गये नामों से इस तथ्य का अनुमान होता है कि कवि की दृष्टि कदाचित् उन दिनों बंगाल में प्रचलित यात्रा महोत्सवों की ओर रही हो, जिसमें नृत्य और संगीत के साथ गीतों का उपयोग किया जाता था। इस आधार पर इस काव्य को 'संगीत:पक' भी माना जा सकता है।

मानवीय सौन्दर्य के चित्रण में प्रकृति को बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस सन्दर्भ में 'गीतगोविन्द' काव्य में ऋतुराज वसन्त, चन्द्र-ज्योत्स्ना, सुरभित समीर तथा यमुना तट के मोहक कुंजों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन देखने को मिलता है। यहां तक कि इस काव्य में पक्षी तक प्रेम की शक्ति और महिमा का गान करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

जयदेव ने इस काव्य में वैदर्भी रीति-माधुर्य व्यंजक वर्णों वाली शैली-का प्रयोग किया है। काव्य में कहीं-कहीं दीर्घ समासों का प्रयोग अवश्य हुआ है, परन्तु फिर भी दुर्बोधता अथवा क्लिष्टता नहीं आने पायी। वस्तुत: कवि ने विशेष-विशेष उत्सवों पर सर्व-साधारण के गाने के लिए ही तो गीतों की रचना की थी। अत: उन्हें सुबोध रखना आवश्यक ही था। गीतों में न केवल असाधारण स्वाभाविकता (अकृत्रिमता) है, अपितु उनमें अनुपम माधुर्य भी है। 'गीतगोविन्द' की रचना-शैली की प्रशंसा में मैकडॉनल का कथन है–''सौन्दर्य में, संगीतमय वचनोपन्यास में और रचना के सौष्ठव में सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में 'गीतगोविन्द' काव्य शैली की उपमा नहीं मिलती। काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि

कवि में कहीं लघु पदों की वेगवती धारा द्वारा, तो कहीं चातुर्य के साथ रचित दीर्घ समासों की लयपूर्ण गति द्वारा अपने पाठकों-श्रोताओं पर यथेष्ट प्रभाव डालने की अद्‌भुत क्षमता है। कवि नाना छन्दों के प्रयोग में ही सिद्धहस्त नहीं, अपितु चरणों के मध्य और अन्त में तुकात्मकता लाने में भी अद्वितीय है।''

'गीतगोविन्द' काव्य में जयदेव ने परम्परागत रचना-प्रणाली का अनुसरण न करके सर्वथा नवीन और मौलिक शैली को अपनाया है। श्लोक, गद्य और गीत के मिले-जुले प्रयोग द्वारा काव्य में अनुपम रचना-माधुर्य की सृष्टि हुई है। कवि ने कथा-सूत्र के निर्वाह के लिए अपेक्षित दृश्ययोजना अथवा अवस्था विशेष के चित्रण जैसे—वर्णनात्मक प्रसंगों में श्लोकों का प्रयोग किया है। पात्रों की मनोदशा को सूचित करने वाले संवादात्मक प्रसंगों में गद्य का प्रयोग हुआ है तथा भावानुभूति की अभिव्यंजना पद्यों में की गयी है। इस प्रकार 'गीतगोविन्द' में अपनायी गयी अभिनव रचना-प्रणाली में वर्ण, संवाद और गीत परस्पर इस प्रकार गुंथ गये हैं कि उनसे एक विलक्षण आनन्द की अनुभूति होती है। इस अनुपम रचना-शैली के आविष्कर्ता जयदेव, अपने उपमान आप ही हैं।

राधा-कृष्ण की केलि-कथाओं तथा उनकी अभिसार-लीलाओं का रसमय चित्रण 'गीतगोविन्द' को आध्यात्मिक शृंगार का मनोरम ग्रन्थ बना देता है। राधा-कृष्ण के प्रणय के चित्रण में प्रेम की विविध दशाओं-आशा, निराशा, उत्कण्ठा, ईर्ष्या, कोप, मान, आक्रोश, मिलनोत्सुकता, सन्देश-प्रेषण तथा मिलन आदिकृका जैसा अभिभूत करने वाला हृदयग्राही चित्रण इस काव्य में हुआ है, वैसा अन्यत्र ढूंढ़ने पर भी कहीं नहीं मिलता।

श्रीकृष्ण के गोपियों के साथ रास-विलास को राधा न पसन्द करती है और न ही सहन कर पाती हैं। राधा अपनी सखी के माध्यम से श्रीकृष्ण के प्रति अपना आक्रोशमूलक उपालम्भ भेजती है, परन्तु उस अनन्य प्रणयिनी को इतने से सन्तोष नहीं होता, उसका प्रेम निर्भर-हृदय उसे अपने प्रियतम के प्रति अपने प्रगाढ़ अनुराग को व्यक्तिगत रूप से प्रकट करने को विवश कर देता है। राधा के आने पर श्रीकृष्ण ब्रज-सुन्दरियों का संग छोड़कर उसकी ओर उन्मुख होते हैं। राधा की सखी श्रीकृष्ण से राधा की और राधा से श्रीकृष्ण की एक-दूसरे में गहन अनुरक्ति का तथा एक-दूसरे से दूर रहने पर अनुभव की जा रही विरहजन्य वेदना का मार्मिक वर्णन करती है। वह अपने कोमल एवं कमनीय वचनों द्वारा दोनों को एक-दूसरे से मिलने के लिए प्रेरित करती है।

चन्द्रोदय होने पर प्रणय-व्यथा से अधीर बनी राधा अपने उद्दीप्त अनुराग पर नियंत्रण नहीं रख पाती और उसकी अभिव्यक्ति को विवश हो जाती है। श्रीकृष्ण के आने पर अति मान करती हुई राधा उपालम्भ से भरे वचनों के द्वारा उनके प्रति अपना रोष-आक्रोश प्रकट करती है। इधर राधा की सखी राधा से मान को छोड़ने का अनुरोध करती है, उधर स्वयं श्रीकृष्ण राधा के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा के व्याज से उसकी चाटुकारिता करते हुए उसे मनाने एवं अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करते हैं। अन्ततः राधा का मान दूर हो जाता है और वह अपने कान्त से मिलने के लिए कदम्ब-कुंज में जाती है। वहां श्रीकृष्ण राधा से प्रणय-याचना करते हुए उससे लज्जा-संकोच को छोड़ने का अनुरोध तथा रति-भोग में सहयोग देने का मनुहार करते हैं। दोनों प्रसन्न मन से रति क्रीड़ा में प्रवृत्त होते हैं और इसके उपरान्त राधा प्रणयसिक्त वचनों से अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से अपनाशृंगार करने को कहती है। अपनी प्राणप्रिया के अनुरोध को गौरव देते हुए श्रीकृष्ण सहर्ष अपने हाथों से राधा काशृंगार करते हैं।

आज के कुछ आलोचक जयदेव पर भक्ति के आलम्बन राधा-कृष्ण को शृंगार का आलम्बन बनाने का दोषारोपण करते हैं, परन्तु माधुर्य भाव के उपासक कवि पर यह लांछन अन्यायपूर्ण ही नहीं, अपितु स्वयं उनके अपने अविवेक का द्योतक है। वस्तुतः दाम्पत्य प्रणय में उपलब्ध तन्मयता अथवा तल्लीनता के चरम उत्कर्ष की तथा भेद में अभेद की कल्पना के चूड़ान्त निदर्शन की अभिव्यक्ति ही भक्ति के क्षेत्र में माधुर्य भाव की सृष्टि करती है। मधुर भाव से भजन करने वाले भक्तों के लिए भगवान की शृंगारिक चेष्टाएं, विलास-लीलाएं तथा प्रेम-गाथाएं ही गेय एवं कीर्तनीय हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि विद्वानों ने इस सारे काव्य को 'अप्रस्तुत प्रशंसा' मानकर वाच्यार्थ में छिपे व्यंग्यार्थ को व्यक्त करने का प्रयास स्वीकार किया है। (प्रस्तुत के माध्यम से अप्रस्तुत का अथवा अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत का वर्णन अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार कहलाता है।) उनके मत के अनुसार श्रीकृष्ण 'जीवों की आत्मा' के प्रतीक हैं। गोपियों की क्रीड़ा अनेक प्रकार का वह प्रपंच है, जिसमें अज्ञान-अवस्था में फंसी मनुष्यों की आत्मा भटकती रहती है। राधा ब्रह्मानन्द का प्रतीक है, जिसे प्राप्त करने पर ही जीवात्मा को चरम सुख की प्राप्ति होती है।

कतिपय विद्वानों के अनुसार जयदेव राधा का उपासक न होकर श्रीकृष्ण के ही उपासक थे। अतः श्रीकृष्ण मनुष्यों की आत्मा के प्रतीक न होकर परमात्मा

के प्रतीक हैं। इस तथ्य को वाणी देते हुए **आचार्य बलदेव उपाध्याय** लिखते हैं–" श्रृंगार-शिरोमणि श्रीकृष्ण भगवत-तत्त्व के प्रतिनिधि हैं और उनकी प्रेमी गोपिकाएं जीव की प्रतीक हैं। राधा-कृष्ण का मिलन जीव-ब्रह्म का मिलन है। इस प्रकार साधना मार्ग के अनेक तथ्यों के रहस्य को यहां सुलझाया गया है।"

महत्व

'गीतगोविन्द' वस्तुतः एक अनुपम एवं अद्‌भुत ग्रन्थ है, जिसके उद्दाम-श्रृंगार के अन्तस्तल में रहस्यमयी माधुर्य भावना की निगूढ़ धारा बह रही है। समग्र संस्कृत साहित्य में इस कोटि की मधुर रचना दूसरी कोई नही। संस्कृत भारती के सौन्दर्य और माधुर्य की पराकाष्ठा का अवलोकन करना हो, तो 'गीतगोविन्द' का अनुशीलन करना चाहिए। इसके शब्दचित्रों से सौन्दर्य मानो छलकता है। इसके गीतों के पद-लालित्य अलौकिक माधुर्य का संचार करता है। इसके छन्दों का नाद-सौन्दर्य अपूर्व आनन्द प्रदान करता है। शब्द और अर्थ का सामंजस्य ऐसा मनोमुग्धकारी है कि संस्कृत से अपरिचित व्यक्ति भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इसकी-सी कोमलकान्त पदावली संसार की किसी भी भाषा के काव्य में दुर्लभ है। इस काव्य में प्रयुक्त दीर्घ समासों में भी विलक्षण प्रसादिकता एवं स्वर-माधुर्य है। अनुप्रास के प्रयोग में तो कवि अद्वितीय है। उनके गीतों में अनुप्रास का प्रयोग पदों के अन्त में ही नहीं, मध्य में भी अपनी छटा बिखेरता हुआ चलता है। ललित छन्दों और कोमलकान्त पदावली का ऐसा मणि-कांचन संयोग हुआ है कि गीतों के उच्चारण मात्र से सहृदयों के हृदय में तदनुरूप रस का आविर्भाव एवं संचार होने लगता है।श्रृंगार की व्यंजना के लिए यह अनूठी शैली बड़ी ही सार्थक सिद्ध हुई है।

'गीतगोविन्द' को बड़ी ही प्रसिद्धि और लोकप्रियता मिली। जयदेव ने जिस ग्राम में रहते हुए 'गीतगोविन्द' की रचना की, उस गांव का नाम ही जयदेवपुर पड़ गया। कवि के समकालीन उड़ीसा के शासक राजा प्रताप रुद्रदेव ने अपने राज्य के गायकों, संगीतज्ञों और नर्तकों के लिए 'गीतगोविन्द' के पदों को गाने का आदेश जारी कर दिया। महाराज ने जयदेव को इस काव्य रचना के लिए 'कविराजराज' की उपाधि से विभूषित किया।

'गीतगोविन्द' जयदेव के जीवन काल में ही पर्याप्त रूप से प्रचलित एवं लोकप्रिय हो गया था–इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। दक्षिण में तो वह इतना अधिक प्रचलित हो गया कि इसके पद्यों को तिरुपति बालाजी के मन्दिर की

सीढ़ियों पर द्रविण लिपि में खुदवाया गया। श्रीवल्लभ सम्प्रदाय में तो श्रीमद्भागवत् पुराण के समान इसकी प्रतिष्ठा है। वैष्णवों में यह विश्वास है कि 'गीतगोविन्द' जहां गाया जाता है, वहां भगवान का अवश्य ही प्रादुर्भाव होता है। इसी से इस सम्प्रदाय में इसे अयोग्य स्थान पर न गाये जाने का विधान किया गया है, जिसका कठोरता से पालन किया जाता है।

वैष्णव सम्प्रदाय में जयदेव कवि को इस सम्प्रदाय की मध्यावस्था का मुख्य महानुभाव माना गया है। सम्प्रदाय में प्रचलित निम्नोक्त पद्य के अनुसार जिस वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तन विष्णु स्वामी ने किया और जिसका संवर्द्धन महाप्रभु वल्लभाचार्य ने किया, उस सम्प्रदाय को इन दोनों महानुभवों के मध्य में भक्त कवि जयदेव ने संरक्षण दिया। इस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय में जयदेव भी गुरु के रूप में वन्दनीय हैं–

विष्णु स्वामी समारम्भां जयदेवादि-मध्यगाम्।
श्रीमद्वल्लभ-पर्यन्तां स्तुमो गुरु-परम्पराम्॥

जयदेव ने 'गीतगोविन्द' की रचना करके संस्कृत में एक नवीन रचना-प्रणाली का आविष्कार किया। 'गीतगोविन्द' के अनुकरण पर संस्कृत में 'अभिनव गीतगोविन्द', 'गीतराघव', 'गीतगंगाधर' तथा 'कृष्णगीत' जैसे–अनेक गीत काव्यों की रचना हुई, परन्तु कोई भी कवि अपने काव्य में 'गीतगोविन्द' जैसी उत्कृष्टता लाने में सफल नहीं हुआ। इधर हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ब्रजभाषा में इसके अनुवाद का प्रयास किया, परन्तु 'सच्ची कविता' का अनुवाद तो हो ही नहीं सकता-यह उक्ति 'गीतगोविन्द' के सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई है। अनुवाद में मूल रचना के रस-भाव की अवतारणा असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। सर विलियम जोन्स द्वारा आंग्ल भाषा में किये गये 'गीतगोविन्द' काव्य के अनुवाद पर जर्मन कवि गेटे की टिप्पणी बड़ी ही सटीक है। "A Real Poetry is that, which cannot be translated." अर्थात् उत्कृष्ट कविता की पहचान का आधार (कसौटी) ही यही है कि उसका दूसरी भाषा में अनुवाद नहीं हो सकता। 'गीतगोविन्द' के मर्म को समझने तथा सहृदयों तक उसके सौन्दर्य को सम्प्रेष्य बनाने के लिए पैंतीस विद्वानों के प्रयास (टीकाएं) उपलब्ध हैं, परन्तु यह काव्य तो वह अगाध सागर है कि इसमें जो जितनी गहरी डुबकी लगाता है। उसके हाथ में उतने ही दुर्लभ एवं बहुमूल्य रत्न आ जाते हैं। कतिपय कवियों द्वारा इस काव्य के अनुकरण पर काव्य-रचना करना जयदेव की कीर्ति-कौमुदी की उज्ज्वलता तथा उत्कृष्टता की स्वीकृति का ही परिचायक है।

भक्ति, शृंगार और कवित्व की त्रिवेणीरूप 'गीतगोविन्द' काव्य का कृष्ण-भक्ति साहित्य में एक अन्य दृष्टि से भी उल्लेखनीय महत्त्व है। यह सर्वजन विदित तथ्य है कि इस काव्य से पूर्व श्रीकृष्ण की प्रेयसी अथवा पत्नी के रूप में रुक्मिणी तथा सत्यभामा आदि का नाम ही लिया जाता था। राधा नाम की किसी स्त्री का कोई अस्तित्त्व नहीं था। श्रीमद्भागवत् पुराण में 'अनायरधितो नूनम्' श्रीकृष्ण की आराधना करने वाली किसी एक गोपी का उल्लेख अवश्य हुआ है, परन्तु कृष्ण-काव्य में कृष्ण के साथ जुड़ने वाली कृष्ण के ही समकक्ष (कहीं-कहीं तो उनसे भी अधिक) महत्त्व प्राप्त करने वाली श्रीकृष्ण की प्रेमिका-पत्नी राधा का उल्लेख कहीं नहीं हुआ। राधा को इस उच्च स्थान-श्रीकृष्ण की अनन्य सहचरी एवं उनसे अभिन्न तथा उनकी नित्यशक्ति:पाकृपर प्रतिष्ठित करने का श्रेय 'गीतगोविन्दकार' जयदेव को ही प्राप्त है। इस ग्रन्थ में चित्रित राधा-कृष्ण के नित्य-विलास के आधार पर ही ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा-कृष्ण कीशृंगार-चेष्टाओं तथा काम-क्रीड़ाओं का वर्णन हुआ है, परन्तु यह एक कठोर सत्य है कि पुराणकार न तो 'गीतगोविन्द' काव्य के वर्णन जैसी मर्यादा और शालीनता का निर्वाह कर सका है और न ही वर्णन को वैसा सरस, रोचक एवं हृदयग्राह्य बना सका है। इस क्षेत्र में भी जयदेव अपने उपमान आप ही हैं। इस आधार पर ही कदाचित् कृष्ण-भक्ति साहित्य में 'गीतगोविन्द' काव्य को धर्मग्रन्थ का गौरव प्राप्त है।

14

कामसूत्र

कामसूत्र महर्षि वात्स्यायन द्वारा रचित भारत का एक प्राचीन कामशास्त्र ग्रंथ है। यह विश्व की प्रथम यौन संहिता है जिसमें यौन प्रेम के मनोशारीरिक सिद्धान्तों तथा प्रयोग की विस्तृत व्याख्या एवं विवेचना की गई है। अर्थ के क्षेत्र में जो स्थान कौटिल्य के अर्थशास्त्र का है, काम के क्षेत्र में वही स्थान कामसूत्र का है।

अधिकृत प्रमाण के अभाव में महर्षि वात्स्यायन का काल निर्धारण नहीं हो पाया है। परन्तु अनेक विद्वानों तथा शोधकर्ताओं के अनुसार महर्षि ने अपने विश्वविख्यात ग्रन्थ कामसूत्र की रचना ईसा की तृतीय शताब्दी के मध्य में की होगी। तदनुसार विगत सत्रह शताब्दियों से कामसूत्र का वर्चस्व समस्त संसार में छाया रहा है और आज भी कायम है। संसार की हर भाषा में इस ग्रन्थ का अनुवाद हो चुका है। इसके अनेक भाष्य एवं संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं, वैसे इस ग्रन्थ के जयमंगला भाष्य को ही प्रामाणिक माना गया है। कोई दो सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध भाषाविद सर रिचर्ड एफ बर्टन (Sir Richard F- Burton) ने जब ब्रिटेन में इसका अंग्रेजी अनुवाद करवाया तो चारों ओर तहलका मच गया और इसकी एक-एक प्रति 100 से 150 पौंड तक में बिकी अरब के विख्यात कामशास्त्र 'सुगन्धित बाग' (Perfumed Garden) पर भी इस ग्रन्थ की अमिट छाप है।

महर्षि के कामसूत्र ने न केवल दाम्पत्य जीवन काशृंगार किया है वरन कला, शिल्पकला एवं साहित्य को भी सम्पदित किया है। राजस्थान की दुर्लभ यौन चित्रकारी तथा खजुराहो, कोणार्क आदि की जीवन्त शिल्पकला भी कामसूत्र से अनुप्राणित है। रीतिकालीन कवियों ने कामसूत्र की मनोहारी झांकियां प्रस्तुत की हैं तो गीत गोविन्द के गायक जयदेव ने अपनी लघु पुस्तिका 'रतिमंजरी' में कामसूत्र का सार संक्षेप प्रस्तुत कर अपने काव्य कौशल का अद्‌भुत परिचय दिया है।

रचना की दृष्टि से कामसूत्र कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के समान है–चुस्त, गम्भीर, अल्पकाय होने पर भी विपुल अर्थ से मण्डित। दोनों की शैली समान ही है– सूत्रात्मक। रचना के काल में भले ही अन्तर है, अर्थशास्त्र मौर्यकाल का और कामसूत्र गुप्तकाल का है।

कामसूत्र-प्रणयन का प्रयोजन

वात्स्यायन ने कामसूत्र में मुख्यतया धर्म, अर्थ और काम की व्याख्या की है। उन्होने धर्म-अर्थ-काम को नमस्कार करते हुए ग्रन्थारम्भ किया है। धर्म, अर्थ और काम को 'त्रयी' कहा जाता है। वात्स्यायन का कहना है कि धर्म परमार्थ का सम्पादन करता है, इसलिए धर्म का बोध कराने वाले शास्त्र का होना आवश्यक है। अर्थसिद्धि के लिए तरह-तरह के उपाय करने पड़ते हैं इसलिए उन उपायों को बतानेवाले अर्थशास्त्र की आवश्यकता पड़ती है और सम्भोग के पराधीन होने के कारण स्त्री और पुरुष को उस पराधीनता से बचने के लिए कामशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है।

वात्स्यायन का दावा है कि यह शास्त्र पति-पत्नी के धार्मिक, सामाजिक नियमों का शिक्षक है। जो दम्पति इस शास्त्र के अनुसार दाम्पत्य जीवन व्यतीत करेंगे उनका जीवन काम-दृष्टि से सदा-सर्वदा सुखी रहेगा। पतिपत्नी आजीवन एक-दूसरे से सन्तुष्ट रहेंगे। उनके जीवन में एकपत्नीव्रत या पातिव्रत को भंग करने की चेष्टा या भावना कभी पैदा नहीं हो सकती। आचार्य का कहना है कि जिस प्रकार धर्म और अर्थ के लिए शास्त्र की आवश्यकता होती है उसी प्रकार काम के लिए भी शास्त्र की आवश्यकता होने से कामसूत्र की रचना की गई है।

कामसूत्र के बारे में भ्रांतियाँ

(1) कामसूत्र में केवल विभिन्न प्रकार के यौन-आसन (सेक्स पोजिशन्स) का वर्णन है।

कामसूत्र 7 भागों में विभक्त है जिसमें से यौन-मिलन से सम्बन्धित भाग 'संप्रयोगिकम्' एक है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ का केवल 20 प्रतिशत ही है जिसमें 69 यौन आसनों का वर्णन है। इस ग्रन्थ का अधिकांश भाग काम के दर्शन के बारे में है, काम की उत्पत्ति कैसे होती है, कामेच्छा कैसे जागृत रहती है, काम क्यों और कैसे अच्छा या बुरा हो सकता है।

(2) कामसूत्र एक सेक्स-मैनुअल है।

'काम' एक विस्तृत अवधारणा है, न केवल यौन-आनन्द। काम के अन्तर्गत सभी इन्द्रियों और भावनाओं से अनुभव किया जाने वाला आनन्द निहित है। गुलाब का इत्र, अच्छी तरह से बनाया गया खाना, त्वचा पर रेशम का स्पर्श, संगीत, किसी महान गायक की वाणी, वसन्त का आनन्द-सभी काम के अन्तर्गत आते हैं। वात्स्यायन का उद्देश्य स्त्री और पुरुष के बीच के 'सम्पूर्ण' सम्बन्ध की व्याख्या करना था। ऐसा करते हुए वे हमारे सामने गुप्तकाल की दैनन्दिन जीवन के मन्त्रमुग्ध करने वाले प्रसंग, संस्कृति एवं सभ्यता का दर्शन कराते हैं। कामसूत्र के सात भागों में से केवल एक में, और उसके भी दस अध्यायों में से केवल एक अध्याय में, यौन-सम्बन्ध बनाने से सम्बन्धित वर्णन है। (अर्थात 36 अध्यायों में से केवल 1 अध्याय में)

(3) कामसूत्र प्रचलन से बाहर (Outdated) हो चुका है।

यद्यपि कामसूत्र दो-ढाई हजार वर्ष पहले रचा गया था, किन्तु इसमें निहित ज्ञान आज भी उतना ही उपयोगी है। इसका कारण यह है कि भले ही प्रौद्योगिकी ने बहुत उन्नति कर ली है, किन्तु मनुष्य अब भी एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं, विवाह करते हैं, तथा मनुष्य के यौन व्यहार अब भी वही हैं, जो हजारों वर्ष पहले थे।

संरचना

यह ग्रंथ सूत्रात्मक है। यह सात अधिकरणों, 36 अध्यायों तथा 64 प्रकरणों में विभक्त है। इसमें चित्रित भारतीय सभ्यता के ऊपर गुप्त युग की गहरी छाप है, उस युग का शिष्ट सभ्य व्यक्ति 'नागरिक' के नाम से यहाँ दिया गया है। ग्रंथ के प्रणयन का उद्देश्य लोकयात्रा का निर्वाह है, न कि राग की अभिवद्धि।

इस तात्पर्य की सिद्धि के लिए वात्स्यायन ने उग्र समाधि तथा ब्रह्मचर्य का पालन कर इस ग्रंथ की रचना की–

तदेतद् ब्रह्मचर्येण परेण च समाधिना।

विहितं लोकयावर्थं न रागार्थोऽस्य संविधिः।। (कामसूत्र, सप्तम अधिकरण, श्लोक 57)

ग्रंथ सात अधिकरणों में विभक्त है जिनमें कुल 36 अध्याय तथा 1250 श्लोक हैं। इसके सात अधिकरणों के नाम हैं–

1. साधारणम् (भूमिका)
2. संप्रयोगिकम् (यौन मिलन)
3. कन्यासम्प्रयुक्तकम् (पत्नीलाभ)
4. भार्याधिकारिकम् (पत्नी से सम्पर्क)
5. पारदारिकम् (अन्यान्य पत्नी संक्रान्त)
6. वैशिकम् (रक्षिता)
7. औपनिषदिकम् (वशीकरण)

प्रथम अधिकरण (साधारण) में शास्त्र का समुद्देश तथा नागरिक की जीवनयात्रा का रोचक वर्णन है।

द्वितीय अधिकरण (सांप्रयोगिक) रतिशास्त्र का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। पूरे ग्रंथ में यह सर्वाधिक महत्वशाली खंड है जिसके दस अध्यायों में रतिक्रीड़ा, आलिंगन, चुंबन आदि कामक्रियाओं का व्यापक और विस्तृत प्रतिपादन हे।

तृतीय अधिकरण (कान्यासंप्रयुक्तक) में कन्या का वरण प्रधान विषय है जिससे संबद्ध विवाह का भी उपादेय वर्णन यहाँ किया गया है।

चतुर्थ अधिकरण (भार्याधिकारिक) में भार्या का कर्तव्य, सपत्नी के साथ उसका व्यवहार तथा राजाओं के अंतःपुर के विशिष्ट व्यवहार क्रमशः वर्णित हैं।

पंचम अधिकरण (पारदारिक) परदारा को वश में लाने का विशद वर्णन करता है जिसमें दूती के कार्यों का एक सर्वांगपूर्ण चित्र हमें यहाँ उपलब्ध होता है।

षष्ठ अधिकतरण (वैशिक) में वेश्याओं, के आचरण, क्रियाकलाप, धनिकों को वश में करने के हथकंडे आदि वर्णित हैं।

सप्तम अधिकरण (औपनिषदिक) का विषय वैद्यक शास्त्र से संबद्ध है।

यहाँ उन औषधों का वर्णन है जिनका प्रयोग और सेवन करने से शरीर के दोनों वस्तुओं की, शोभा और शक्ति की, विशेष अभिवृद्धि होती है। इस उपायों के वैद्यक शास्त्र में 'बृष्ययोग' कहा गया है।

संक्षिप्त परिचय

कामसूत्र का प्रणयन अधिकरण, अध्याय और प्रकरणबद्ध किया गया है। इसमें 7 अधिकरण, 36 अध्याय, 64 प्रकरण और 1250 सूत्र (श्लोक) हैं। ग्रन्थकार ने ग्रंथ लिखने से पूर्व जो विषयसूची तैयार की थी उसका नाम उसने 'शास्त्रसंग्रह' रखा है अर्थात् वह संग्रह जिससे यह विषय (कामसूत्र) शासित हुआ है।

कामसूत्र के प्रथम अधिकरण का नाम साधारण है। शास्त्रसंग्रह, प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय का प्रथम प्रकरण है। इस अधिकरण में ग्रन्थगत सामान्य विषयों का परिचय है। इस अधिकरण में पाँच अध्याय और प्रकरण हैं। विषय-विवेचन के आधार पर अध्यायों और प्रकरणों के नामकरण किए गए हैं। प्रथम अधिकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यही है कि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति कैसे की जा सकती है। मनुष्य को श्रुति, स्मृति, अर्थविद्या आदि के अध्ययन के साथ कामशास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। कामसूत्रकार ने सुझाव दिया है कि व्यक्ति को पहले विद्या पढ़नी चाहिए, फिर अर्थोपार्जन करना चाहिए। इसके बाद विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश कर नागरकवृत्त का आचरण करना चाहिए। विवाह से पूर्व किसी दूती या दूत की सहायता से किसी योग्य नायिका से परिचय प्राप्त कर प्रेम सम्बन्ध बढ़ाना चाहिए और फिर उसी से विवाह करना चाहिए। ऐसा करने पर गार्हस्थ्य जीवन, नागरिक जीवन सदैव सुखी और शान्त बना रहता है।

द्वितीय अधिकरण का नाम साम्प्रयोगिक है। 'सम्प्रयोग' को अर्थ सम्भोग होता है। इस अधिकरण में स्त्री-पुरुष के सम्भोग विषय की ही व्याख्या विभिन्न रूप से की गई है, इसलिए इसका नाम 'साम्प्रयोगिक' रखा गया है। इस अधिकरण में दस अध्याय और सत्रह प्रकरण हैं। कामसूत्रकार ने बताया है कि पुरुष अर्थ, धर्म और काम इन तीनों वर्गों को प्राप्त करने के लिए स्त्री को अवश्य प्राप्त करे किन्तु जब तक सम्भोग कला का सम्यक् ज्ञान नहीं होता है तब तक त्रिवर्ग की प्राप्ति समुचित रूप से नहीं हो सकती है और न आनन्द का उपभोग ही किया जा सकता है।

तीसरे अधिकरण का नाम कन्या सम्प्रयुक्तक है। इसमें बताया गया है कि नायक को कैसी कन्या से विवाह करना चाहिए। उससे प्रथम किस प्रकार परिचय प्राप्त कर प्रेम-सम्बन्ध स्थापित किया जाए? किन उपायों से उसे आकृष्ट कर अपनी विश्वासपात्री प्रेमिका बनाया जाए और फिर उससे विवाह किया जाए। इस अधिकरण में पाँच अध्याय और नौ प्रकरण हैं। उल्लिखित नौ प्रकरणों को सुखी दाम्पत्य जीवन की कुंजी ही समझना चाहिए। कामसूत्रकार विवाह को धार्मिक बन्धन मानते हुए दो हृदयों का मिलन स्वीकार करते हैं। पहले दो हृदय परस्पर प्रेम और विश्वास प्राप्त कर एकाकार हो जाएँ तब विवाह बन्धन में बँधना चाहिए, यही इस अधिकरण का सारांश है। यह अधिकरण सभी प्रकार की सामाजिक, धार्मिक मर्यादाओं के अन्तर्गत रहते हुए व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थन करता है।

चतुर्थ अधिकरण का नाम भार्याधिकारिक है। इसमें दो अध्याय और आठ प्रकरण है। विवाह हो जाने के बाद कन्या 'भार्या' कहलाती है। एकचारिणी और सपत्नी (सौत) दो प्रकार की भार्या होती है। इन दोनों प्रकार की भार्याओं के प्रति पति के तथा पति के प्रति पत्नी के कर्त्तव्य इस अधिकरण में बताए गए हैं। इस अधिकरण में स्त्रीमनोविज्ञान और समाजविज्ञान को सूक्ष्म अध्ययन निहित है।

पाँचवें अधिकरण का नाम पारदारिक है। इसमें छह अध्याय और दस प्रकरण हैं। परस्त्री और परपुरुष का परस्पर प्रेम किन परिस्थितियों में उत्पन्न होता है, बढ़ता है और विच्छिन्न होता है, किस प्रकार परदारेच्छा पूरी की जा सकती है, और व्यभिचारी से स्त्रियों की रक्षा कैसे हो सकती है, यही इस अधिकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

छठे अधिकरण का नाम वैशिक है। इसमें छह अध्याय और बारह प्रकरण है। इस अधिकरण में वेश्याओं के चरित्र और उनके समागम उपायों आदि का वर्णन किया गया है। कामसूत्रकार ने वेश्यागमन को एक दुर्व्यसन मानते हुए बताया है कि वेश्यागमन से शरीर और अर्थ दोनों की क्षति होती है।

सातवें अधिकरण को नाम औपनिषदिक है। इसमें दो अध्याय और छह प्रकरण हैं। इस अधिकरण में, नायक-नायिका एक-दूसरे को मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, औषधि आदि प्रयोगों से किस प्रकार वशीभूत करें, नष्टरोग को पुनः किस प्रकार उत्पन्न किया जाए, रूप-लावण्य को किस प्रकार बढ़ाया जाए, तथा बाजीकरण प्रयोग आदि मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। औपनिषदिक का अर्थ 'टोटका' है।

पाठानुशीलन से प्रतीत होता है कि वर्तमान पुस्तकों में मूल प्रति से भिन्न सूत्रनुक्रम है। अनुमान है कि सबसे पहले नन्दी ने ही ब्रह्मा के प्रवचन से कामशास्त्र को अलग कर उसका प्रवचन किया। कामशास्त्र के बाद मनुस्मृति और अर्थशास्त्र प्रतिपादित होने का भी अनुमान होता है, क्योंकि मनु और बृहस्पति ने ग्रन्थ का प्रवचन न कर पृथक्करण किया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की पृथक्करण-प्रणाली का सूत्रपात प्रवचन काल के बहुत बाद से प्रारम्भ हुआ है। नन्दी द्वारा कहे गए एक हजार अध्यायों के कामशास्त्र को श्वेतकेतु ने संक्षिप्त कर पाँच सौ अध्यायों का संस्करण प्रस्तुत किया। स्पष्ट है कि ब्रह्मा के द्वारा प्रवचन किए गए शास्त्र में से नन्दी ने कामविषयक शास्त्र को एक हजार अध्यायों में विभक्त किया था। उसने अपनी ओर से किसी प्रकार का घटाव-बढ़ाव नहीं किया क्योंकि वह प्रवचन-काल था। प्रवचन-काल की परम्परा थी कि गुरुओं, आचार्यों से जो कुछ पढ़ा या सुना जाता था उसे ज्यों को त्यों शिष्यों और जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाता था, अपनी ओर से कोई जोड़-तोड़ नहीं किया जाता था। प्रवचन-काल के अनन्तर शास्त्रों के सम्पादन, संशोधन और संक्षिप्तीकरण का प्रारम्भ होता है। श्वेतकेतु प्रवचन-काल के बाद का प्रतीत होता है, क्योंकि उसने नन्दी के कामशास्त्र के एक हजार अध्यायों को संक्षिप्तीकरण और संपादन किया था। बल्कि यह कहना अधिक तर्कसंगत होगा कि श्वेतकेतु के काल से शास्त्र के सम्पादन और संक्षिप्तीकरण की पद्धति प्रचलित हो गई थी और बाभ्रव्य के समय में वह पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी।

टीकाएँ

कामसूत्र के ऊपर तीन टीकाएँ प्रसिद्ध हैं-

(1) जयमंगला-प्रणेता का नाम यथार्थतः यशोधर है जिन्होंने वीसलदेव (1243-61) के राज्यकाल में इसका निर्माण किया।

(2) कंदर्पचूडामणि-बघेलवंशी राजा रामचंद्र के पुत्र वीरसिंहदेव रचित पद्यबद्ध टीका (रचनाकाल सं. 1633-1577 ई.)।

(3) कामसूत्रव्याख्या—भास्कर नरसिंह नामक काशीस्थ विद्वान् द्वारा 1788 ई. में निर्मित टीका।

काम-विषयक अन्य प्राचीन ग्रन्थ

ज्योतिरीश्वर कृत पंचसायक—मिथिला नरेश हरिसिंहदेव के सभापण्डित कविशेखर ज्योतिरीश्वर ने प्राचीन कामशास्त्रीय ग्रंथों के आधार ग्रहण कर इस ग्रंथ

का प्रणयन किया। 396 श्लोकों एवं 7 सायकरूप अध्यायों में निबद्ध यह ग्रन्थ आलोचकों में पर्याप्त लोकप्रिय रहा है।

पद्मश्रीज्ञान कृत नागरसर्वस्व–कलामर्मज्ञ ब्राह्मण विद्वान वासुदेव से संप्रेरित होकर बौद्धभिक्षु पद्मश्रीज्ञान इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ 313 श्लोकों एवं 38 परिच्छेदों में निबद्ध है। यह ग्रन्थ दामोदर गुप्त के "कुट्टनीमत" का निर्देश करता है और "नाटकलक्षणरत्नकोश" एवं "शार्ंगधरपद्धति" में स्वयंनिर्दिष्ट है। इसलिए इसका समय दशम शती का अंत में स्वीकृत है।

जयदेव कृत रतिमंजरी–60 श्लोकों में निबद्ध अपने लघुकाय रूप में निर्मित यह ग्रंथ आलोचकों में पर्याप्त लोकप्रिय रहा है। यह ग्रन्थ डॉ. संकर्षण त्रिपाठी द्वारा हिन्दी भाष्य सहित चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित है।

कोक्कोक कृत रतिरहस्य–यह ग्रन्थ कामसूत्र के पश्चात दूसरा ख्यातिलब्ध ग्रन्थ है। परम्परा कोक्कोक को कश्मीरी स्वीकारती है। कामसूत्र के सांप्रयोगिक, कन्यासंप्ररुक्तक, भार्याधिकारिक, पारदारिक एवं औपनिषदिक अधिकरणों के आधार पर पारिभद्र के पौत्र तथा तेजोक के पुत्र कोक्कोक द्वारा रचित इस ग्रन्थ 555 श्लोकों एवं 15 परिच्छेदों में निबद्ध है। इनके समय के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि कोक्कोक सप्तम से दशम शतक के मध्य हुए थे। यह कृति जनमानस में इतनी प्रसिद्ध हुई सर्वसाधारण कामशास्त्र के पर्याय के रूप में "कोकशास्त्र" नाम प्रख्यात हो गया।

कल्याणमल्ल कृत अनंगरंग–मुस्लिम शासक लोदीवंशावतंश अहमदखान के पुत्र लाडखान के कुतूहलार्थ भूपमुनि के रूप में प्रसिद्ध कलाविदग्ध कल्याणमल्ल ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ 420 श्लोकों एवं 10 स्थलरूप अध्यायों में निबद्ध है।

15

मनुस्मृति

मनुस्मृति हिन्दू धर्म का एक प्राचीन धर्मशास्त्र (स्मृति) है। इसे मानव-धर्म-शास्त्र, मनुसंहिता आदि नामों से भी जाना जाता है। यह उपदेश के रूप में है, जो मनु द्वारा ऋषियों को दिया गया। इसके बाद के धर्मग्रन्थकारों ने मनुस्मृति को एक सन्दर्भ के रूप में स्वीकारते हुए इसका अनुसरण किया है।

धर्मशास्त्रीय ग्रंथकारों के अतिरिक्त शंकराचार्य, शबरस्वामी जैसे–दार्शनिक भी प्रमाणरूपेण इस ग्रन्थ को उद्धृत करते हैं। परम्परानुसार यह स्मृति स्वायंभुव मनु द्वारा रचित है, वैवस्वत मनु या प्राचनेस मनु द्वारा नहीं। मनुस्मृति से यह भी पता चलता है कि स्वायंभुव मनु के मूलशास्त्र का आश्रय कर भृगु ने उस स्मृति का उपबृंहण (परिवर्धन) किया था, जो प्रचलित मनुस्मृति के नाम से प्रसिद्ध है। इस 'भार्गवीया मनुस्मृति' की तरह 'नारदीया मनुस्मृति' भी प्रचलित है।

मनुस्मृति वह धर्मशास्त्र है जिसकी मान्यता जगविख्यात है। न केवल भारत में अपितु विदेश में भी इसके प्रमाणों के आधार पर निर्णय होते रहे हैं और आज भी होते हैं। अत: धर्मशास्त्र के रूप में मनुस्मृति को विश्व की अमूल्य निधि माना जाता है। भारत में वेदों के उपरान्त सर्वाधिक मान्यता और प्रचलन 'मनुस्मृति' का ही है। इसमें चारों वर्णों, चारों आश्रमों, सोलह संस्कारों तथा सृष्टि उत्पत्ति के अतिरिक्त राज्य की व्यवस्था, राजा के कर्तव्य, भांति-भांति के विवादों, सेना का प्रबन्ध आदि उन सभी विषयों पर परामर्श दिया गया है, जो कि मानव मात्र के जीवन में घटित होने सम्भव है। यह सब धर्म-व्यवस्था वेद पर आधारित है। मनु

महाराज के जीवन और उनके रचनाकाल के विषय में इतिहास-पुराण स्पष्ट नहीं हैं। तथापि सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि मनु आदिपुरुष थे और उनका यह शास्त्र आदिशास्त्र है।

भूमिका

'मनुस्मृति' भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। इसकी गणना विश्व के ऐसे ग्रन्थों में की जाती है, जिनसे मानव ने वैयक्तिक आचरण और समाज रचना के लिए प्रेरणा प्राप्त की है। इसमें प्रश्न केवल धार्मिक आस्था या विश्वास का नहीं है। मानव जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति, किसी भी प्रकार आपसी सहयोग तथा सुरुचिपूर्ण ढंग से हो सके, यह अपेक्षा और आकांक्षा प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति में होती है। विदेशों में इस विषय पर पर्याप्त खोज हुई है, तुलनात्मक अध्ययन हुआ है और समालोचनाएँ भी हुई हैं। हिन्दु समाज में तो इसका स्थान वेदत्रयी के उपरान्त हैं। मनुस्मृति की पचासों पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुईं हैं। कालान्तर में बहुत से प्रक्षेप भी स्वाभाविक हैं। साधारण व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह बाद में सम्मिलित हुए अंशों की पहचान कर सके। कोई अधिकारी विद्वान ही तुलनात्मक अध्ययन के उपरान्त ऐसा कर सकता है।

भारत से बाहर प्रभाव

एन्टॉनी रीड कहते हैं कि बर्मा, थाइलैण्ड, कम्बोडिया, जावा-बाली आदि में धर्मशास्त्रों और प्रमुखतः मनुस्मृति, का बड़ा आदर था। इन देशों में इन ग्रन्थों को प्राकृतिक नियम देने वाला ग्रन्थ माना जाता था और राजाओं से अपेक्षा की जाती थी कि वे इनके अनुसार आचरण करेंगे। इन ग्रन्थों का प्रतिलिपिकरण किया गया, अनुवाद किया गया और स्थानीय कानूनों में इनको सम्मिलित कर लिया गया।

'बाइबल इन इण्डिया' नामक ग्रन्थ में लुई जैकोलिऑट (Louis Jacolliot) लिखते हैं–

मनुस्मृति ही वह आधारशिला है जिसके ऊपर मिस्र, परसिया, ग्रेसियन और रोमन कानूनी संहिताओं का निर्माण हुआ। आज भी यूरोप में मनु के प्रभाव का अनुभव किया जा सकता है।

मनुस्मृति के प्रणेता एवं काल

मनुस्मृति के काल एवं प्रणेता के विषय में नवीन अनुसंधानकारी विद्वानों ने पर्याप्त विचार किया है। किसी का मत है कि "मानव" चरण (वैदिक शाखा) में प्रोक्त होने के कारण इस स्मृति का नाम मनुस्मृति पड़ा। कोई कहते हैं कि मनुस्मृति से पहले कोई 'मानव धर्मसूत्र' था (जैसे, मानव गृह्यसूत्र आदि हैं) जिसका आश्रय लेकर किसी ने एक मूल मनुस्मृति बनाई थी जो बाद में उपबृंहित होकर वर्तमान रूप में प्रचलित हो गई। मनुस्मृति के अनेक मत या वाक्य जो निरुक्त, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलते हैं, उनके हेतु पर विचार करने पर भी कई उत्तर प्रतिभासित होते हैं। इस प्रकार के अनेक तथ्यों का बूहलर (Buhler, G.) (सैक्रेड बुक्स ऑव ईस्ट सीरीज, संख्या 25), पाण्डुरंग वामन काणे (हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र में मनुप्रकरण) आदि विद्वानों ने पर्याप्त विवेचन किया है। यह अनुमान बहुत कुछ तर्कसंगत प्रतीत होता है कि मनु के नाम से धर्मशास्त्रीय विषय परक वाक्य समाज में प्रचलित थे, जिनका निर्देश महाभारत आदि में है तथा जिन वचनों का आश्रय लेकर वर्तमान मनुसंहिता बनाई गई, साथ ही प्रसिद्धि के लिये भृगु नामक प्राचीन ऋषि का नाम उसके साथ जोड़ दिया गया। मनु से पहले भी धर्मशास्त्रकार थे, यह मनु के "एते" आदि शब्दों से ही ज्ञात हुआ है। कौटिल्य ने "मानवाः" (मनुमतानुयायियों) का उल्लेख किया है।

विद्वानों के अनुसार मनु परम्परा की प्राचीनता होने पर भी वर्तमान मनुस्मृति ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी से प्राचीन नहीं हो सकती (यह बात दूसरी है कि इसमें प्राचीनतर काल के अनेक वचन संगृहीत हुए हैं), यह बात यवन, शक, कंबोज, चीन आदि जातियों के निर्देश से ज्ञात होती है। यह भी निश्चित है कि स्मृति का वर्तमान रूप द्वितीय शती ईसा पूर्व तक दृढ़ हो गया था और इस काल के बाद इसमें कोई संस्कार नहीं किया गया।

मनुस्मृति की संरचना एवं विषयवस्तु

मनुस्मृति भारतीय आचार-संहिता का विश्वकोश है, मनुस्मृति में बारह अध्याय तथा दो हजार पाँच सौ श्लोक हैं, जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति, संस्कार, नित्य और नैमित्तिक कर्म, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, राजधर्म व प्रायश्चित आदि विषयों का उल्लेख है।

(1) जगत् की उत्पत्ति।

(2) संस्कारविधि, व्रतचर्या, उपचार।

(3) स्नान, दाराधिगमन, विवाहलक्षण, महायज्ञ, श्राद्धकल्प।
(4) वृत्तिलक्षण, स्नातक व्रत।
(5) भक्ष्याभक्ष्य, शौच, अशुद्धि, स्त्रीधर्म।
(6) गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ, मोक्ष, संन्यास।
(7) राजधर्म।
(8) कार्यविनिर्णय, साक्षिप्रश्नविधान।
(9) स्त्रीपुंसधर्म, विभाग धर्म, धूत, कंटकशोधन, वैश्यशूद्रोपचार।
(10) संकीर्णजाति, आपद्धर्म।
(11) प्रायश्चित्त।
(12) संसारगति, कर्म, कर्मगुणदोष, देशजाति, कुलधर्म, निश्रेयस।

मनुस्मृति में व्यक्तिगत चित्तशुद्धि से लेकर पूरी समाज व्यवस्था तक कई ऐसी सुंदर बातें हैं, जो आज भी हमारा मार्गदर्शन कर सकती हैं। जन्म के आधार पर जाति और वर्ण की व्यवस्था पर सबसे पहली चोट मनुस्मृति में ही की गई है (श्लोक-12/109, 12/114, 9/335, 10/65, 2/103, 2/155-58, 2/168, 2/148, 2/28)। सबके लिए शिक्षा और सबसे शिक्षा ग्रहण करने की बात भी इसमें है (श्लोक- 2/198-215)। स्त्रियों की पूजा करने अर्थात् उन्हें अधिकाधिक सम्मान देने, उन्हें कभी शोक न देने, उन्हें हमेशा प्रसन्न रखने और संपत्ति का विशेष अधिकार देने जैसी बातें भी हैं (श्लोक-3/56-62, 9/192-200)। राजा से कहा गया है कि वह प्रजा से जबरदस्ती कुछ न कराए (8/168)। यह भी कहा गया कि प्रजा को हमेशा निर्भयता महसूस होनी चाहिए (8/303)। सबके प्रति अहिंसा की बात की गई है (4/164)।

सप्तांग राज्य का सिद्धान्त

भारतीय राजदर्शन में मनु द्वारा प्रतिपादित सप्तांग राज्य सिद्धान्त अत्यन्त चर्चित है। इसके अनुसार, राज्य एक शरीर की भाँति है जिसके सात अंग हैं। ये सभी राज्य-रूपी शरीर की प्रकृतियां है जिनके बिना राज्य संचालन की कल्पना करना कठिन है। मनुस्मृति के अध्याय 9 के श्लोक 294 में राज्य के सात अंग गिनाये गये हैं-

(1) स्वामी अर्थात् राजा, (2) मंत्री, (3) पुर (दुर्ग), (4) राष्ट्र, (5) कोष, (6) दण्ड तथा (7) मित्र

इन सात अंगों से निर्मित राज्य का प्रत्येक अंग एक विशिष्ट कार्य करता है और इसी कारण उसका महत्व है। मनु के अनुसार यदि इनमें से किसी भी एक अंश की उपेक्षा होती है तो राजा के लिये राज्य का कुशल संचालन सम्भव नहीं है।

राजा सम्बन्धी विचार

मनु ने राजा को अनेक राजाओं के सारभूत अंश से निर्मित बताया है। राजा ईश्वर से उत्पन्न है अतः उसका अपमान नहीं हो सकता है। राजा से द्वेष करने का अर्थ है कि स्वयं को विनाश की ओर ले जाना। मनु स्मृति में तो यहां तक लिखा है कि राजा में अनेक देवता प्रवेश करते हैं। अतः वह स्वयं एक देवता बन जाता है। मनु स्मृति के अनुसार- 'ऐसा राजा इन्द्र अथवा विद्युत के समान एश्वर्यकर्ता, पवन के समान सबके प्राणावत, प्रिय तथा हृदय की बात जानने वाला, यम के समान पक्षपात-रहित न्यायधीश, सूर्य के समान न्याय, धर्म तथा विद्या का प्रकाश, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने वाला, वरुण के समान दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चन्द्र के समान श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्द देने वाला तथा कुबेर के समान कोष भरने वाला होना चाहिए।'

मनु ने राजा के गुणों एवं कर्तव्यों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। मनु के अनुसार राजा को प्रजा तथा ब्राह्मणों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहना चाहिए। राजा को अपने इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए। उसे काम, क्रोध आदि से मुक्त रहना चाहिए। "मनुस्मृति" में स्पष्ट किया गया है कि उसे शिकार, जुआ, दिवाशयन, परनिन्दा, परस्त्री प्रेम, मद्यपान, नाच-गाना, चुगलखोरी, ईर्ष्या, परछिद्रान्वेषण, कटुवचन, धन का अपहरण आदि से बचना चाहिए। मनु स्मृति में राजा के लिये मुख्य निर्देश निम्न हैं-

1. वह शस्त्र धन, धान्य, सेना, जल आदि से परिपूर्ण पर्वतीय दुर्ग में हर प्रकार से सुरक्षित निवास करे ताकि वह शत्रुओं से बच सके।
2. राजा स्वजातीय और सर्वगुण सम्पन्न स्त्री से विवाह करे।
3. राजा समय-समय पर यज्ञ का आयोजन करे और ब्राह्मणों को दान करे।
4. प्रजा से कर वसूली ईमानदार एवं योग्य कर्मचारियों के द्वारा किया जाना चाहिए। प्रजा के साथ राजा का संबंध पिता-पुत्र की तरह होना चाहिए।
5. राजा को युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिए। युद्ध में मृत्यु से उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

6. विभिन्न राजकीय कार्यों के लिये विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति की जाय।
7. राजा को विस्तारवादी नीति को अपनाना चाहिए।
8. अपने सैन्य बल एवं बहादुरी का सदैव प्रदर्शन करना चाहिए।
9. गोपनीय बातों का गोपनीय बनाकर रखना चाहिए। शत्रुओं की योजनाओं को समझने के लिये मजबूत गुप्तचर व्यवस्था रखनी चाहिए।
10. अपने मंत्रियों को सदैव विश्वास में रखना चाहिए।
11. राजा सदैव सर्तक रहे। अविश्वसनीय पर बिल्कुल विश्वास न करे और विश्वसनीय पर पैनी निगाह रखे।
12. राजा को राज्य की रक्षा तथा शत्रु के विनाश के लिये तत्पर रहना चाहिए।
13. राजा को अपने कर्मचारियों, अधिकारियों के आचरण की जांच करते रहना चाहिए। गलत पाने पर उनको पदच्युत कर देना चाहिए।
14. राजा को मृदुभाषी होना चाहिए।

मनु ने राजा की दिनचर्या का भी वर्णन किया है। उन्होंने सम्पूर्ण दिन को तीन भागों में बांटकर प्रत्येक के लिये अलग-अलग कार्य निर्धारित किये हैं। राजा को स्नान एवं ध्यान के बाद ही न्याय का कार्य करना चाहिए। राजकार्यों के संबंध में अपने मंत्रियों के साथ तथा विदेश मामलों में अपने गुप्तचरों एवं राजदूतों के साथ परामर्श नियमित रूप से करना चाहिए। "मनुस्मृति" में राजा के गतिशील जीवन की चर्चा की गई है। इसमें राजा को सदैव सजग और सावधान रहने की आशा की जाती है।

युद्ध एवं संकट के समय राजा के कार्य

मनुस्मृति में युद्ध के समय राजा के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि युद्ध के समय राजा को भयभीत नहीं होना चाहिए और पूरी तैयारी और मनोबल के साथ शत्रु का संहार करना चाहिए। यह राजा का धर्म है कि वह शत्रु का संहार कर मातृभूमि की रक्षा करें। "मनुस्मृति" में स्पष्ट किया गया है कि शांति के समय प्रजा के धान्य का छठा-आठवां भाग प्राप्त करे परन्तु युद्ध के समय वह चौथा भाग भी प्राप्त कर सकता है। आपातकाल में राजा द्वारा अतिरिक्त कर लेना कोई पाप नहीं है।

शासन-संबंधी विचार

मनु के अनुसार शासन का मुख्य उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति में सहायक होना है। अत: राजा को अपने सहयोगियों (मंत्रियों) के माध्यम से इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। मनुस्मृति में स्पष्ट किया गया है कि राजा को सदैव लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए, जो प्राप्त हो गया है उसे सुरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिए। राजकोष को भरने का सदैव प्रयास करना चाहिए। समाज के कमजोर एवं सुपात्र लोगों को दान करना चाहिए। राजा को प्रजा के साथ पुत्रवत वर्ताव करना चाहिए तथा राष्ट्रहित में कठोर भी हो जाना चाहिए। राजा को न्यायी, सिद्धान्तप्रिय तथा मातृभूमि से प्रेम करने वाला होना चाहिए।

राजा को राजकार्य में सहायता देने के लिए मंत्रियों की व्यवस्था है। मनुस्मृति में "मंत्री" शब्द का प्रयोग नहीं है, परन्तु 'सचिव' शब्द का प्रयोग कई बार मिलता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि अकेले आदमी से सरल काम भी मुश्किल हो जाता है। अत: शासन के जटिल कार्यों के लिये मंत्री नियुक्त किये जाने चाहिए। वे विद्वान, कर्तव्यपरायण, शास्त्रज्ञाता, कुलीन तथा अनुभवी होने चाहिए। शासन कार्य में एकांत में तथा अलग-अलग तथा आवश्यकतानुसार संयुक्त मत्रंणा करनी चाहिए। मंत्रियों को उनकी योग्यतानुसार कार्य सौंपना चाहिए। यहां पर मनु स्पष्ट करते हैं-'सूर, दक्ष और कुलीन सदस्य को वित्त विभाग, शुचि आचरण से युक्त व्यक्ति को रत्न एवं खनिज विभाग, सम्पूर्ण शाखों के ज्ञाता मनोवैज्ञानिक, अन्त:करण से शुद्ध तथा चतुर कुलीन व्यक्ति को संधि-विग्रह विभाग का अधिष्ठाता बनाया जाना चाहिए। मंत्रिपरिषद के अमात्य नामक व्यक्ति को दण्ड विभाग, सेना विभाग तथा राजा को राष्ट्र एवं कोष अपने अधीन रखना चाहिए। इनमें से वह ब्राह्मणों को विशेष महत्व देने पर बल देते हैं। उनका मत है कि -" इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है वह ब्राह्मण ही है। ब्राह्मण ब्रह्मा का ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र है।"

मनु की मान्यता है कि मंत्रणा अत्यन्त गोपनीय होनी चाहिए। इसके लिए मध्याह्न अथवा आधी रात को उपयुक्त माना है। मनुस्मृति से यह भी पता चलता है कि उस समय मंत्रियों का राजा के प्रति उत्तरदायित्व, मत्रंणा की गोपनीयता मिलकर निर्णय लेने की भावना तथा मंत्रियों में विभागों के बंटवारे की व्यवस्था विकसित हो गई थी। प्रशासनिक कार्यों के संचालन के लिये वह योग्य, अनुभवी तथा ईमानदार कर्मचारी की नियुक्ति के पक्षधर हैं। भ्रष्ट अधिकारियों पर पैनी

निगाह रखते हुए उनके विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने चाहिए। कर्मचारियों एवं महत्वपूर्ण पदाधिकारियों पर नजर रखने के लिये गुप्तचर व्यवस्था को प्रभावी बनाया जाना चाहिए। राजदूत के संबंध में मनु ने स्पष्ट किया है कि निर्भीक प्रकृति के, सुवक्ता, देश-काल पहचानने वाले, हृदय एवं मनोभाव को पहचानने वाले, विविध लिपियों के ज्ञाता तथा विश्वासपात्र को राजदूत बनाया जाना चाहिए।

टीकाएं

मनु पर कई व्याख्याएँ प्रचलित हैं-

(1) मेधातिथि कृत भाष्य,
(2) कुल्लूक भट्ट द्वारा रचित मन्वर्थमुक्तावली टीका,
(3) नारायण कृत मन्वर्थ विवृत्ति टीका,
(4) राघवानन्द कृत मन्वर्थ चन्द्रिका टीका,
(5) नन्दन कृत नन्दिनी टीका,
(6) गोविन्दराज कृत मन्वाशयानसारिणी टीका आदि।

मनु के अनेक टीकाकारों के नाम ज्ञात हैं, जिनकी टीकाएँ अब लुप्त हो गई हैं, यथा- असहाय, भर्तृयज्ञ, यज्वा, उपाध्याय ऋजु, विष्णुस्वामी, उदयकर, भारुचि या भागुरि, भोजदेव धरणीधर आदि।

भारत में वेदों के उपरान्त सर्वाधिक मान्यता और प्रचलन 'मनुस्मृति' का ही है। इसमें चारों वर्णों, चारों आश्रमों, सोलह संस्कारों तथा सृष्टि उत्पत्ति के अतिरिक्त राज्य की व्यवस्था, राजा के कर्तव्य, भांति-भांति के विवादों, सेना का प्रबन्ध आदि उन सभी विषयों पर परामर्श दिया गया है, जो कि मानव मात्र के जीवन में घटित होने सम्भव हैं यह सब धर्म-व्यवस्था वेद पर आधारित है। मनु महाराज के जीवन और उनके रचनाकाल के विषय में इतिहास-पुराण स्पष्ट नहीं हैं, तथापि सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि मनु आदिपुरुष थे और उनका यह शास्त्र आदिशास्त्र है, क्योंकि मनु की समस्त मान्यताएँ सत्य होने के साथ-साथ देश, काल तथा जाति बन्धनों से रहित हैं।

मनुस्मृति के कुछ चुने हुए विचार (श्लोक)

धृति क्षमा दमोस्तेयं, शौचं इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यं अक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्।

अर्थ-धर्म के दस लक्षण हैं-धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, स्वच्छता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना (अक्रोध)।

नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवांगानि रक्षेद्विवरमात्मनः।
वकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्।

अर्थ–कोई शत्रु अपने छिद्र (निर्बलता) को न जान सके और स्वयं शत्रु के छिद्रों को जानता रहे, जैसे–कछुआ अपने अंगों को गुप्त रखता है, वैसे ही शत्रु के प्रवेश करने के छिद्र को गुप्त रक्खे। जैसे–बगुला ध्यानमग्न होकर मछली पकड़ने को ताकता है, वैसे अर्थसंग्रह का विचार किया करे, शस्त्र और बल की वृद्धि कर के शत्रु को जीतने के लिए सिंह के समान पराक्रम करे। चीते के समान छिप कर शत्रुओं को पकड़े और समीप से आये बलवान शत्रुओं से शश (खरगोश) के समान दूर भाग जाये और बाद में उनको छल से पकड़े।

नोच्छिष्ठं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याचौव तथान्तरा।
न चौवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्।

अर्थ–न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे, न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात हाथ-मुंह धोये बिना कहीं इधर-उधर जाये।

तैलक्षौमे चिताधूमे मिथुने क्षौरकर्मणि।
तावद्भवति चांडालः यावद् स्नानं न समाचरेत्।

अर्थ-तेल-मालिश के उपरान्त, चिता के धूंऐं में रहने के बाद, मिथुन (संभोग) के बाद और केश-मुण्डन के पश्चात-व्यक्ति तब तक चांडाल (अपवित्र) रहता है जब तक स्नान नहीं कर लेता-मतलब इन कामों के बाद नहाना जरूरी है।

अनुमंता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः।

अर्थ-अनुमति (= मारने की आज्ञा) देने, मांस के काटने, पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिए लेने और बेचने, मांस के पकाने, परोसने और खाने वाले-ये आठों प्रकार के मनुष्य घातक, हिंसक अर्थात् ये सब एक समान पापी हैं।

मनु और कौटिल्य के विचारों की तुलना

मनु और कौटिल्य प्राचीन भारत के प्रमुख राजनीतिक विचारक थे। उनके विचारों में अनेक बिन्दुओं पर समानता तथा अनेक बिन्दुओं पर असमानता दिखायी पड़ती है।

दोनों ही विद्वान प्राचीन भारतीय परम्पराओं रीतियों एवं वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करते हैं। कौटिल्य ने सृष्टि के सम्बन्ध में स्पष्ट मत नहीं रखा है, परन्तु मनु का मत है कि ब्राह्मणों का जन्म ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रियों की उत्पति उनकी भुजाओं से, वैश्यों की उत्पति उनके पेट से हुई है। दोनों मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष मानते हैं। दोनों ही दण्डनीति को स्वीकार करते हैं। मनु के अनुसार दण्ड ही राजा है। राज्य की उत्पति के संबंध में दोनों के विचार समान है। मनु दैवीय उत्पति के सिद्धान्त को तो मानते हैं, परन्तु उसमें समझौते की झलक मिलती है। कौटिल्य भी उत्पति के संबंध में समझौतावादी सिद्धान्त स्वीकार करता है। दोनों ही सावयवी सिद्धान्त (Organic Theory), को स्वीकार करते हुए राज्य रूपी शरीर के सात अंग (सप्ताङ्ग) बताये हैं। इनमें स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र प्रमुख हैं। दोनों ने ही राजतन्त्र को श्रेष्ठ शासन माना है। वे राज्य को सर्व सत्ताधारी बताते हैं। दोनों की राज्य का समान लक्ष्य मानते हैं। दोनों ने प्रशासन में मंत्रियों की भूमिका को स्वीकार किया है। मंत्रियों की योग्यता के संबंध में दोनों के विचार समान हैं। कौटिल्य ने राजनीतिक व्यवस्था पर अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में व्यापक व्याख्या की परन्तु मनु ने इतनी व्यापक व्याख्या नहीं की। कर व्यवस्था पर दोनों के विचार समान हैं। वे कर जन-कल्याण के लिये लगाने पर बल देते थे। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों अथवा विदेश नीति के संचालन में दोनों ने ही षाड्गुण्य नीति तथा मण्डल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

16

लीलावती

लीलावती, भारतीय गणितज्ञ भास्कर द्वितीय द्वारा सन 1150 ईस्वी में संस्कृत में रचित, गणित और खगोल शास्त्र का एक प्राचीन ग्रन्थ है, इसमें 625 श्लोक हैं साथ ही यह सिद्धान्त शिरोमणि का एक अंग भी है। लीलावती में अंकगणित का विवेचन किया गया है।

'लीलावती', भास्कराचार्य की पुत्री का नाम था। इस ग्रन्थ में पाटीगणित (अंकगणित), बीजगणित और ज्यामिति के प्रश्न एवं उनके उत्तर हैं। प्रश्न प्राय: लीलावती को सम्बोधित करके पूछे गये हैं। किसी गणितीय विषय (प्रकरण) की चर्चा करने के बाद लीलावती से एक प्रश्न पूछते हैं। उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोक देखिये-

अये बाले लीलावति मतिमति ब्रुहि सहितान्
द्विपंचद्वात्रिंशतत्रिनवतिशताष्टादश दश।
शतोपेतानेतानयुतवियुतांश्चापि वद मे
यदि व्यक्ते युक्तिव्यवकलनमार्गेऽसि कुशला (लीलावती, परिकर्माष्टक, 13)

(अये बाले लीलावति ! यदि तुम जोड़ और घटाने की क्रिया में दक्ष हो गयी हो तो (यदि व्यक्ते युक्तिव्यवकलनमार्गेऽसि कुशला) (इनका) योगफल (सहितान्) बताओ- द्वि पंच द्वात्रिंशत् (32), त्रिनवतिशत् (193), अष्टादश (18), दश (10) -- इनमें 100 जोड़ते हुए (शतोपेतन), 10 हजार से (अयुतात्) इनको घटा दें (वियुताम्) तो।)

वर्ण्य विषय

लीलावती में 13 अध्याय हैं जिनमें निम्नलिखित विषयों का समावेश है-

1. परिभाषा
2. परिकर्म-अष्टक (संकलन (जोड़), व्यवकलन (घटाना), गुणन (गुणा करना), भाग (भाग करना), वर्ग (वर्ग करना), वर्गमूल (वर्ग मूल निकालना), घन (घन करना), घन मूल (घन मूल निकालना)
3. भिन्न-परिकर्म-अष्टक
4. शून्य-परिकर्म-अष्टक
5. प्रकीर्णक
6. मिश्रक-व्यवहार-इसमें ब्याज, स्वर्ण की मिलावट आदि से सम्बन्धित प्रश्न आते हैं।
7. श्रेढी-व्यवहार
8. क्षेत्र-व्यवहार
9. खात-व्यवहार
10. चिति-व्यवहार
11. क्रकच-व्यवहार
12. राशि-व्यवहार
13. छाया-व्यवहार
14. कुट्टक
15. अंक-पाश

लीलावती के क्षेत्रव्यवहार प्रकरण में भास्कराचार्य ने त्रिकोणमिति पर प्रश्न, त्रिभुजों तथा चतुर्भुजों के क्षेत्रफल, पाई का मान और गोलों के तल के क्षेत्रफल तथा आयतन के बारे में जानकारी दी है-

व्यासे भनन्दाग्नि (3927) हते विभक्ते,
खबाणसूर्यैः (1250) परिधिस्तु सूक्ष्मः।
द्वाविंशति (22) घ्ने वृहितेथ शैलैः (7)
स्थूलोऽथवा स्याद व्यवहारः योग्यः।
अर्थात पाई का सूक्ष्म मान = 3927/1250, और
पाई का स्थूल मान = 22/7 है।

भनन्दाग्नि = भ. नन्द. अग्नि ---झ भम् (नक्षत्र)-27, नन्द (नन्द राजाओं की संख्या)-9, अग्नि-3 (जठराग्नि, बड़वाग्नि, तथा दावाग्नि),

भनन्दाग्नि–3927 (ध्यान रखे, अंकानां वामतो गतिः --झ अंकों को दायें से बायें तरफ रखना है), खम् (आकाश)–0, बाण–5, सूर्याः–12, खबाणसूर्याः–1250, शैलम्–7,

निम्नलिखित प्रश्न, गायत्री छन्द से सम्बन्धित क्रमचय के बारे में है–

प्रस्तारे मित्र गायर्त्याः स्युः पादे व्यक्तयः कति।
एकादिगुरवश्चाशु कथ्यतां तत्पृथक् पृथक् 110।

लीलावती कौन थी

अनभिज्ञ लोग कहेंगे कि लीलावती नाम की भास्कराचार्य की कन्या थी। जबकि सम्पूर्ण ग्रन्थ का अध्ययन करने पर यह कल्पना आ ही नहीं सकती।

उदाहरण के लिए, भिन्न परिक्रमाष्टक प्रकरण के प्रारम्भ में गणेश स्तुति करते हुए लिखते हैं–

लीलागललुलल्लोलकालव्यालविलासिने
गणेशाय नमो नीलकमलामलकान्तये।

इस प्रकार, 'लीला' शब्द से ग्रन्थ आरम्भ हुआ है। इसके बाद स्थान–स्थान पर 'लीला' या 'लीलावती' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

लीलावती ग्रन्थ का अन्तिम श्लोक इस बात का प्रमाण है कि लीलावती, भास्कराचार्य की पत्नी का नाम है।

येषां सुजातिगुणवर्गविभूषिताङ्गी शुद्धाखिल व्यवहृति खलु कण्ठासक्ता।
लीलावतीह सरसोक्तिमुदाहरन्ती तेषां सदैव सुखसम्पदुपैति वृद्धिम्।

इस श्लोक के स्पष्टतः दो अभिप्राय हैं–

(1) भावार्थ–जिन शिष्यों को जोड़, घटाना, गुणन, भाग, वर्ग, घन आदि व्यवहारों, गणित के अवयवों निर्दोषगणित आदि से विभूषित लीलावती ग्रन्थ कण्ठस्थ होता है, उनकी गणित सम्पत्ति सदा वर्धमान होती है।

(2) भावार्थ– उच्च कुलपरम्परा में उत्पन्न, सुन्दर, सुशील, गुणसम्पत्तिसम्पन्न, स्वच्छव्यवहारप्रिया, सुकोमल एवं मधुरभाषिणी पत्नी जिनके कण्ठसक्ता हो (अर्थात अर्धांगिनी हो), उनकी सुख सम्पत्ति इस जगत में सदा सुखद, सुभद एवम वर्धमान होती है।

अतएव उक्त सद्गुणसम्पन्ना आर्या लीलावती नाम की श्रीमती को आचार्य भास्कर की अर्धाङ्गनी होने का ऐतिहासिक गौरव प्राप्त है।

इन्हें भी देखें

- सिद्धान्त शिरोमणि,
- बीजगणित (संस्कृत ग्रन्थ),
- गणिताध्याय,
- गोलाध्याय,
- आर्यभटीय,
- दश-गीतिका-पाद,
- गणित-पाद,
- काल-क्रिया-पाद,
- गोल-पाद।

17

मृच्छकटिकम्

मृच्छकटिकम् (अर्थात्, मिट्टी का खिलौना या मीट्टी कि गाड़ी) संस्कृत नाट्य साहित्य में सबसे अधिक लोकप्रिय रूपक है। इसमें 10 अंक है। इसके रचनाकार महाराज शूद्रक हैं। नाटक की पृष्ठभूमि पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) है। भरत के अनुसार दस रूपों में से यह 'मिश्र प्रकरण' का सर्वोत्तम निदर्शन है। 'मृच्छकटिकम्' नाटक इसका प्रमाण है कि अंतिम आदमी को साहित्य में जगह देने की परम्परा भारत को विरासत में मिली है जहाँ चोर, गणिका, गरीब ब्राह्मण, दासी, नाई जैसे–लोग दुष्ट राजा की सत्ता पलट कर गणराज्य स्थापित कर अंतिम आदमी से नायकत्व को प्राप्त होते हैं।

कथावस्तु

मृच्छकटिकम् की कथावस्तु कवि प्रतिभा से प्रसूत है। उज्जयिनी का निवासी सार्थवाह विप्रवर चारूदत्त इस प्रकरण का नायक है और दाखनिता के कुल में उत्पन्न वसंतसेना नायिका है। चारूदत्त की पत्नी धूता पूर्वपरिग्रह के अनुसार ज्येष्ठा है जिससे चारूदत्त को रोहितसेन नाम का एक पुत्र है। चारूदत्त किसी समय बहुत समृद्ध था परंतु वह अपने दया दाक्षिण्य के कारण निर्धन हो चला था, तथापि प्रामाणिकता, सौजन्य एवं औदार्य के नाते उसकी महती प्रतिष्ठा थी। वसंतसेना नगर की शोभा है, अत्यंत उदार, मनस्विनी एवं व्यवहारकुशला, रूपगुणसंपन्ना साधारणी नवयौवना नायिका उत्तम प्रकृति की है और वह

असाधारण गुणों से मुग्ध हो उस पर निर्व्याज प्रेम करती है। नायक की यों एक साधारणी और एक स्वीया नायिका होने के कारण यह संकीर्ण प्रकरण माना जाता है।

इसकी कथावस्तु तत्कालीन समाज का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करती है। यह केवल व्यक्तिगत विषय पर ही नहीं अपितु इस युग की शासन व्यवस्था एवं राज्य स्थिति पर भी प्रचुर प्रकाश डालता है। साथ ही साथ वह नागरिक जीवन का भी यथावत् चित्र अंकित करता है। इसमें नगर की साज-सजावट, वारांगनाओं का व्यवहार, दास प्रथा, द्यूत क्रीड़ा, विट की धूर्तता, चौरकर्म, न्यायालय में न्यायनिर्णय की व्यवस्था, अवांछित राजा के प्रति प्रजा के द्रोह, एवं जनमत के प्रभुत्व का सामाजिक स्वरूप भली भाँति चित्रित किया गया है। साथ ही समाज में दरिद्रजन की स्थिति, गुणियों का सम्मान, सुख दु:ख में समरूप मैत्री के बिदर्शन, उपकृत वर्ग की कृतज्ञता, निरपराध के प्रति दंड पर क्षोभ, राज वल्लभों के अत्याचार, वारनारी की समृद्धि एवं उदारता, प्रणय की वेदी पर बलिदान, कुलांगनाओं का आदर्श चरित्र जैसे–वैयक्तिक विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस विशेषता के कारण यह याथा र्थवादी रचना संस्कृत साहित्य में अनूठी है। इसी कारण यह पाश्चात्य सहृदयों का अत्यधिक प्रिय लगी। इसका अनुवाद विविध भाषाओं में हो चुका है और भारत तथा सुदूर अमेरीका, रूस, फ्रांस, जर्मनी, इटली, इंग्लैण्ड के अनेक रंगमंचों पर इसका सफल अभिनय भी किया जा चुका है।

'मृच्छकटिक' की कथा का केन्द्र है उज्जयिनी। वह इतना बड़ा नगर है कि पाटलिपुत्र का संवाहक उसकी प्रसिद्धि सुनकर बसने को, धन्धा प्राप्त करने को, आता है। हमें इसमें चातुर्वर्ण्य का समाज मिलता है–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मणों का मुख्य काम पुरोहिताई था, पर वे राजकाज में भी दिलचस्पी लेते थे। इस कथा में जो एक बड़ी गम्भीर बात मिलती है वह यह है कि यहाँ ब्राह्मण, व्यापारी और निम्नवर्ण मिलकर मदान्ध क्षत्रिय राज्य को उखाड़ फेंकते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है। और फिर सोचने की बात यह है कि इस कथा का लेखक राजा शूद्रक माना जाता है, जो क्षत्रियों में श्रेष्ठ कहा गया है।

दस अंकों का परिचय

मृच्छकटिकम् में दस अंक हैं, प्रत्येक अंक में कई दृष्य हैं। इस नाटक में एक सच्चरित्र किन्तु गरीब ब्राह्मण चारुदत्त की कहानी है जिसे सौंदर्यमयी गणिका

वसन्तसेना प्रेम करती है। इसी के साथ आर्यक की राज्यप्राप्ति की राजनीतिक कथा भी गुँथी हुई है। कृतिकार ने दोनों कथाओं को कुशलता से जोड़ा है। यह नाटक मोटे तौर पर दो हिस्सों में हैं- पहला, वसन्तसेना और चारुदत्त का प्रेम-प्रसंग तथा दूसरा, राज्य विद्रोह के साथ आर्यक को राजपद की प्राप्ति।

पहला अंक (अलंकारन्यास)—इस अंक में यह कथा है कि राजा का साला शाकार उज्जयिनी की प्रसिद्ध गणिका वसन्तसेना को पाना चाहता है। अपने दो साथियों के साथ एक अँधेरी रात में वह वसन्तसेना का पीछा करता है। भयभीत वसन्तसेना चारुदत्त के घर में शरण लेती है। चोरों से बचने की बात कहकर वह अपने सारे स्वर्ण-आभूषाण चारुदत्त के घर में धरोहर के रूप में छोड़ देती है।

दूसरा अंक (द्यूतकार-संवाहक)—संवाहक, जो पहले चारुदत्त की सेवा में था, जुए की लत लगने पर बहुत सा धन हार जाता है। बचाव के लिए वह वसन्तसेना के घर शरण लेता है, जो अपना कंगन देकर उसे ऋणमुक्त करती है। वह बौद्ध-भिक्षु बन जाता है।

तीसरा अंक (संधिच्छेद)—शार्विलक नाम का ब्राह्मण वसन्तसेना की दासी मदनिका से प्रेम करता है। उसे दासत्व से छुड़ाने के लिए वह एक रात चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर वसन्तसेना द्वारा धरोहर रखे गए सोने के सारे आभूषण चुरा लेता है। उधर चारुदत्त की पतिव्रता पत्नी धूता अपने पति को लोकनिन्दा से बचाने के लिए, चुराए गए आभूषाणों के बदले में अपनी कीमती रत्नावली देती है, चारुदत्त वह रत्नावली देकर विदूषक मैत्रोय को वसन्तसेना के घर भेजता है।

चौथा अंक (मदनिका-शर्विलक)—शार्विलक चुराए हुए आभूषाण लेकर मदनिका को दासत्व से मुक्त कराने के लिए वसन्तसेना के घर पहुँचता है। चोरी की बात सुनकर मदनिका बहुत दुखी होती है। इस गलती को सुधारने की भावना से वह शार्विलक को यह समझाती है कि चोरी के आभूषाण वसन्तसेना को सौंप देने से न वह चोर रहेगा, न चारुदत्त के सिर पर ऋण रहेगा और वसन्तसेना के आभूषण उसे वापिस मिल जाएँगे, शार्विलक ऐसा ही करता है। वह वसन्तसेना से कहता है कि चारुदत्त ने यह संदेश भेजा है कि घर जर्जर होने से हम स्वर्णपात्र को सुरक्षित नहीं रख सकते, अतः आप इसे अपने पास रखें। वसन्तसेना संदेश के बदले में कुछ ले जाने की बात कहकर मदनिका को शार्विलक को सौंप देती है। इसी अंक में विदूषक वसन्तसेना से मिलकर कहता है कि स्वर्णपात्र जुए में हार गए हैं इसलिए यह रत्नावली स्वीकार करें। वसन्तसेना वास्तविकता जानती

है, पर कुछ नहीं करती। वह शाम को चारुदत्त के घर आने का निश्चय करती है।

पाँचवाँ अंक (दुर्दिन)—इस अंक में वर्षा-ऋतु वर्णन हुआ है। वसन्तसेना चारुदत्त से मिलती है और वर्षा की झड़ी के कारण रात उसी के घर रुक जाती है।

छठा अंक (प्रवहणविपर्यय)—सुबह चारुदत्त पुष्पकरण्डक उद्यान में घूमने जाता है, वसन्तसेना के लिए गाड़ी तैयार रखने का आदेश देकर ताकि वह उसमें उद्यान तक यात्रा कर सके। यहीं वसन्तसेना चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को यह जिद करते देखती है कि वह मिट्टी की गाड़ी से नहीं स्वर्ण-शकटिका (सोने की गाड़ी) से खेलना चाहता है। वसन्तसेना सारे आभूषाण मिट्टी की गाड़ी में रखकर कहती है कि इससे सोने की गाड़ी बना लेना। वसन्तसेना चारुदत्त से उद्यान में भेंट करने निकलती है, पर भूल से उसी स्थान पर खड़ी शाकार की गाड़ी में बैठ जाती है। उधर कारागार तोड़कर, रक्षक को मारकर निकल भागा ग्वाले का बेटा आर्यक, बचाव के लिए चारुदत्त के वाहन में चढ़ जाता है। रास्ते में दो पुलिस के सिपाही- वीरक और चन्दन वाहन देखते भी हैं, पर उनमें से एक आर्यक को रक्षा करने का वचन देकर जाने देता है।

सातवाँ अंक (आर्यकापहरण)—राजा पालक ने सिद्धों की भविषयवाणी पर विश्वास करके जिस आर्यक नामक व्यक्ति को बन्दी बना लिया था, जब वह बंधन तोड़कर बचता हुआ चारुदत्त की गाड़ी में चढ़कर उद्यान में चारुदत्त के समक्ष आता है और उनसे शरण माँगता है। चारुदत्त उसे सुरक्षित अपनी गाड़ी में बाहर निकलवा देता है।

आठवाँ अंक (वसन्तसेना-मोटन)—भूल से शाकार की गाड़ी में बैठी वसन्तसेना जब उद्यान में पहुँचती है तो चारुदत्त के स्थान पर दुष्ट शाकार से उसका सामना होता है। वसन्तसेना एक बार फिर शाकार के चंगुल में फँस जाती है, शाकार का आग्रह न मानने पर वह वसन्तसेना का गला घोंट देता है और उसे मरा जानकर पत्तों से ढक कर चला जाता है। तभी जुआरी से बौद्ध-भिक्षु बन चुका संवाहक मृतप्राय वसन्तसेना को विहार में लाकर पुनर्जीवन देता है।

नवाँ अंक (व्यवहार)—शाकार चारुदत्त को वसन्तसेना की हत्या का आरोपी बनाता है। न्यायालय में विवाद चलता है, चारुदत्त स्वयं को निर्दोष साबित नहीं कर पाता। दुखी चारुदत्त अपने मित्र मैत्रोय की प्रतीक्षा करता है, जो वसन्तसेना के पास उन आभूषणों को लौटाने गया था जो वसन्तसेना ने रोहसेन

की मिट्टी की गाड़ी के स्थान पर सोने की गाड़ी बना लेने को दे दिए थे। इसी क्षण वही आभूषण लेकर मैत्रोय आ जाता है। किन्तु बातचीत करते हुए मैत्रोय से बगल में संभाले हुए वे आभूषाण सबके सामने गिर पड़ते हैं और यह मान लिया जाता है कि आभूषणों के लोभ में चारुदत्त ने ही वसन्तसेना की हत्या की है। उसे मृत्युदण्ड का आदेश देकर वधस्थल की ओर ले जाया जाता है।

दसवाँ अंक (संहार)–इस अंक में एक तो शाकार का सेवक स्थवरक चारुदत्त को निर्दोष बताता है, पर उसका कोई विश्वास नहीं करता। दूसरे ठीक इसी समय प्राण बचाने वाले बौद्ध-भिक्षु बने संवाहक के साथ आकर वसन्तसेना शाकार की दुष्टता व्यक्त कर देती है और चारुदत्त झूठे आरोप से मुक्त हो जाता है। इधर राज्य में नए राजा आर्यक का आगमन होता है, वह न केवल आरोप मुक्त चारुदत्त को राज्य देता है, बल्कि झूठा आरोप लगाने के कारण शाकार को मृत्यु-दण्ड भी देता है। किन्तु चारुदत्त के कहने पर शाकार को भी क्षमा कर दिया जाता है। पतिव्रता धूता चारुदत्त के लिए मृत्यु-दण्ड का समाचार सुनकर अग्नि-प्रवेष को तत्पर हो उठती है, चारुदत्त उपस्थित होकर इस दुखद घटना को रोकता है। राजा आर्यक प्रसन्न होकर वसन्तसेना को 'वधू' के पद से विभूषित करता है। भिक्षु संवाहक को सब विहारों का कुलपति बना दिया जाता है। दास स्थवरक को दासता से मुक्त किया जाता है, मृत्युदण्ड देने वाले चाण्डालों को चाण्डालों का प्रमुख बना दिया जाता है, यहाँ तक कि शाकार को भी अभयदान दिया जाता है। इन सुखद घटनाओं के साथ नाटक समाप्त होता है।

साहित्यिक समीक्षा

मृच्छकटिक की न केवल कथावस्तु ही अत्यंत रोचक है, अपितु कवि की चरित्र चित्रण की चातुरी बहुत उच्चकोटि की है। यद्यपि इसमें प्रधान रस विप्रलंभ श्रृंगार है तथापि हास्य, करुणा, भयानक एवं वात्सल्य जैसे–हृदयहारी विविध रसों का सहज सामंजस्य है। ग्रीक नाट्यकला की दृष्टि से भी परखे जाने पर इसका मूल्य पाश्चात्य मनीषियों द्वारा बहुत ऊँचा आँका गया है। इसकी भाषा प्रसाद गुण से संपन्न हो अत्यंत प्रांजल है। प्राकृत के विविध स्वरूपों का दर्शन इसमें होता है- प्राच्या, मागधी और शौरसेनी के अतिरिक्त, सर्वोत्तम प्राकृत महाराष्ट्री और आवंती के भव्य निदर्शन यहाँ उपलब्ध होते हैं। ग्रियर्सन के अनुसार इस प्रकरण में शाकारी विभाषा में टक्की प्राकृत का भी प्रयोग पाया जाता है। शब्दचयन में माधुरी एवं अर्थव्यक्ति की ओर कवि ने सविशेष ध्यान दिया है, जिससे आवंती एवं वैदर्भी रीति का निर्वाह पूर्ण रूप से हुआ है।

मृच्छकटिक में दो कथाएँ हैं। एक चारुदत्त की, दूसरी आर्यक की। गुणाढ्य की बृहत्कथा में गोपाल दारक आर्यक के विद्रोह की कथा है। बृहत्कथा अपने मूल रूप में पैशाची भाषा में 'बड्डकहा' के नाम से लिखी गई थी। इससे प्रकट होता है कि यह नाटक ईस्वी पहली शती या दूसरी शती का है।

यह नाटक संस्कृत साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। इसमें–

(1) गणिका का प्रेम है। विशुद्ध प्रेम, धन के लिए नहीं, क्योंकि वसंतसेना दरिद्र चारुदत्त से प्रेम करती है। गणिका कलाएँ जानने वाली ऊँचे दर्जे की वेश्याएँ होती थीं, जिनका समाज में आदर होता था। ग्रीक लोगों में ऐसी ही 'हितायरा' हुआ करती थीं।

(2) गणिका गृहस्थी और प्रेम की अधिकारिणी बनती है, वधू बनती है और कवि उसे समाज के सम्मान्य पुरुष ब्राह्मण चारुदत्त से ब्याहता है। ब्याह कराता है, रखैल नहीं बनाता। स्त्री-विद्रोह के प्रति कवि की सहानुभूति है। पाँचवें अंक में ही चारुदत्त और वसंतसेना मिल जाते हैं, परन्तु लेखक का उद्देश्य वहीं पूरा नहीं होता। वह दसवें अंक तक कथा बढ़ाकर राजा की सम्मति दिलवाकर प्रेमपात्र नहीं, विवाह कराता है। वसंतसेना अन्तःपुर में पहुँचना चाहती है और पहुँच जाती है। लेखक ने इरादतन यह नतीजा अपने सामने रखा है।

(3) इस नाटक में कचहरी में होने वाले पाप और राजकाज की पोल का बड़ा यथार्थवादी चित्रण है, जनता के विद्रोह की कथा है।

(4) इस नाटक का नायक राजा नहीं है, व्यापारी है, जो व्यापारी-वर्ग के उत्थान का प्रतीक है।

(5) इसमें दो भाषाओं का प्रयोग है, जैसा कि प्रायः संस्कृत के और नाटकों में है। राजा, ब्राह्मण और पढ़े-लिखे लोग संस्कृत बोलते हैं और स्त्रियां और निचले तबके के लोग प्राकृत।

ये इसकी विशेषताएँ हैं। इस नाटक की राजनीतिक विशेषता यह है कि इसमें क्षत्रिय राजा बुरा बताया गया है। गोप-पुत्र 'आर्यक' एक ग्वाला है, जिसे कवि राजा बनाता है। यद्यपि कवि वर्णाश्रम को मानता है, पर वह गोप को ही राजा बनाता है।

ऐसा लगता है कि यह मूलकथा पुरानी है और सम्भवतः यह घटना कोई वास्तविक घटना है, जो किंवदन्ती में रह गई। दासप्रथा के लड़खड़ाते समाज का चित्रण बहुत सुन्दर हुआ है और यह हमें चाणक्य के समय में मिलता है, जब

'आर्य' शब्द 'नागरिक' (रोमन–Citizen) के रूप में प्रयुक्त मिलता है। हो सकता है, कोई पुरानी किंवदन्ती चाणक्य के बाद के समय में इस कथा में उतर आई हो। बुद्ध के समय में व्यापारियों का उत्कर्ष भी काफी हुआ था। तब उज्जयिनी का राज्य अलग था, कोसल का अलग। यहाँ भी उज्जयिनी का वर्णन है। एक जगह लगता है कि उस समय भी भारत की एकता का आभास था, जब कहा गया है कि 'सारी पृथ्वी आर्यक ने जीत ली'–वह पृथ्वी जिसकी कैलास पताका है। देखा जाए तो कवि यथार्थवादी था और निष्पक्ष था। उसने सबकी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दिखाई हैं और बड़ी गहराई से चित्रण किया है। यही उसकी सफलता का कारण है।

रचनाकार एवं रचनाकाल

यह महाराज शूद्रक की कृति मानी जाती है, जो भास और कालिदास की भांति राज कवि हुए हैं। मृच्छकटिक ईसवी प्रथम शती के लगभग की रचना कही जा सकती है। कहा जाता है, भासप्रणीत 'चारूदत्त' नामक चतुरंगी रूपक की कथावस्तु को परिवर्धित कर किसी परवर्ती शूद्र कवि के द्वारा मृच्छकटिक की रचना हुई है। वस्तुतः इसकी कथावस्तु का आधार बृहत्कथा और कथासरित्सागर में वर्णित कथाओं में मिलता है।

प्राचीनता

मृच्छकटिक की कथा का केन्द्र है उज्जयिनी। वह इतना बड़ा नगर है कि पाटलिपुत्र का संवाहक उसकी प्रसिद्धि सुनकर बसने को, धन्धा प्राप्त करने को, आता है। उस समय वह पाटलिपुत्र को महानगर नहीं कहता। इसका मतलब है कि उस समय पाटलिपुत्र से अधिक महत्व उज्जयिनी का था। स्पष्ट ही पाटलिपुत्र बुद्ध के समय में पाटलिपुत्र (ग्राम) था, जबकि उज्जयिनी में महासेन चण्ड प्रद्योत का समृद्ध राज्य था। दूसरी प्राचीनता है कि इसमें दास प्रथा बहुत है। दास–दासी धन देकर आजाद कर लिए जाते थे। उस समाज में गणिका भी वधू बन जाती थी। यह सब बातें ऐसे समाज की हैं, जहाँ ज्यादा कड़ाई नहीं मिलती, जो बाद में चालू हुई थी। बल्कि कवि ने गणिका को वधू बनाकर समाज में एक नया आदर्श रखा है। उसमें विद्रोह की भावना है। अत्याचारी को वह पशु की तरह मरवाता है, स्त्री को ऊँचा उठाता तथा दास स्थावरक को आजाद करता है। यों कह सकते हैं कि यह नाटक जोकि शास्त्रीय शब्दों में प्रकरण है–बहुत

ही महत्त्वपूर्ण है। कौन जानता है, ऐसे न जाने कितने सामाजिक नाटक काल के गाल में खो गए। हूणों से लेकर तुर्कों तक के विध्वंसों ने न जाने कितने ग्रन्थ-रत्न जला डाले !

अनुवाद एवं टीकाएँ

मृच्छकटिक पर अनेक टीकाएँ लिखी गईं। इसके अनेक अनुवाद भी हुए हैं और अनेक संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें से सर्वप्राचीन टीका पृथ्वीधर की है। जीवानंद ने भी एक व्यापक टीका लिखी। हरिदास की व्याख्या अत्यंत मार्मिक है। आर्थर रायडर द्वारा इसका अंग्रेजी अनुवाद हार्वर्ड युनिवर्सिटी सीरीज में प्रकाशित हुआ है।

18

चरक संहिता

चरकसंहिता आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह संस्कृत भाषा में है। इसके उपदेशक अत्रिपुत्र पुनर्वसु, ग्रंथकर्ता अग्निवेश और प्रतिसंस्कारक चरक हैं। चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता आयुर्वेद के दो प्राचीनतम आधारभूत ग्रन्थ हैं, जो काल के गाल में समाने से बचे रह गए हैं। भारतीय चिकित्साविज्ञान के तीन बड़े नाम हैं–चरक, सुश्रुत और वाग्भट। चरक संहिता, सुश्रुतसंहिता तथा वाग्भट का अष्टांगसंग्रह आज भी भारतीय चिकित्सा विज्ञान (आयुर्वेद) के मानक ग्रन्थ हैं।

चरकसंहिता की रचना दूसरी शताब्दी से भी पूर्व हुई थी। यह आठ भागों में विभक्त है जिन्हें 'स्थान' नाम दिया गया है (जैसे, निदानस्थान)। प्रत्येक 'स्थान' में कई अध्याय हैं जिनकी कुल संख्या 120 है। इसमें मानव शरीर से सम्बन्धित (तत्कालीन) सिद्धान्त, हेतुविज्ञान, अनेकानेक रोगों के लक्षण तथा चिकित्सा वर्णित है। चरकसंहिता में भोजन, स्वच्छता, रोगों से बचने के उपाय, चिकित्सा-शिक्षा, वैद्य, धाय और रोगी के विषय में विशद चर्चा की गयी है।

प्राचीन वाङ्मय के परिशीलन से ज्ञात होता है कि उन दिनों ग्रन्थ या तंत्र की रचना शाखा के नाम से होती थी, जैसे–कठ शाखा में कठोपनिषद् बनी। शाखाएँ या चरण उन दिनों के विद्यापीठ थे, जहाँ अनेक विषयों का अध्ययन होता था। अतः संभव है, चरकसंहिता का प्रतिसंस्कार चरक शाखा में हुआ हो। सन्दर्भ चिकित्सा विज्ञान जब शैशवावस्था में ही था उस समय चरकसंहिता में प्रतिपादित आयुर्वेदीय सिद्धान्त अत्यन्त श्रेष्ठ तथा गंभीर थे। इसके दर्शन से अत्यन्त प्रभावित

आधुनिक चिकित्साविज्ञान के आचार्य प्राध्यापक आसलर ने चरक के नाम से अमेरिका के न्यूयार्क नगर में 1898 में 'चरक-क्लब' संस्थापित किया जहाँ चरक का एक चित्र भी लगा है।

आचार्य चरक और आयुर्वेद का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक का स्मरण होने पर दूसरे का अपने आप स्मरण हो जाता है। आचार्य चरक केवल आयुर्वेद के ज्ञाता ही नहीं थे परन्तु सभी शास्त्रों के ज्ञाता थे। उनका दर्शन एवं विचार सांख्य दर्शन एवं वैशेषिक दर्शन का प्रतिनिधीत्व करता है। आचार्य चरक ने शरीर को वेदना, व्याधि का आश्रय माना है, और आयुर्वेक शास्त्र को मुक्तिदाता कहा है। आरोग्यता को महान् सुख की संज्ञा दी है, कहा है कि आरोग्यता से बल, आयु, सुख, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है। आचार्य चरक, संहिता निर्माण के साथ-साथ जंगल-जंगल स्थान-स्थान घूम-घूमकर रोगी व्यक्ति की, चिकित्सा सेवा किया करते थे तथा इसी कल्याणकारी कार्य तथा विचरण क्रिया के कारण उनका नाम 'चरक' प्रसिद्ध हुआ। उनकी कृति चरक संहिता चिकित्सा जगत का प्रमाणिक प्रौढ़ और महान् सैद्धान्तिक ग्रन्थ है।

चरकसंहिता का आयुर्वेद को मौलिक योगदान चरकसंहिता का आयुर्वेद के क्षेत्र में अनेक मौलिक योगदान हैं जिनमें से मुख्य हैं- रोगों के कारण तथा उनकी चिकित्सा का युक्तिसंगत दृष्टिकोण।

चिकित्सकीय परीक्षण की वस्तुनिष्ठ विधियों का उल्लेख

चरकसंहिता का मूल

चरकसंहिता आज हमें जिस रूप में उपलब्ध है, संभवतया उसकी रचना मूलतः आत्रोय के एक प्रतिभावान शिष्य अग्निवेश ने ईसापूर्व 7वीं अथवा 8वीं शताब्दी में की थी। इसमें आत्रोय की शिक्षाओं का समावेश है। अग्निवेश का ग्रन्थ 11वीं शताब्दी ई. तक उपलब्ध रहा प्रकट होता है।

समय के साथ-साथ आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र के नये सिद्धान्त बनते गये, नये-नये उपचार आदि की खोज होती रही। तब यह आवश्यक समझ गया कि अग्निवेश तंत्र का संशोधन किया जाये और यह कार्य चरक ने किया जो सम्भवतया ईसापूर्व 175 में रहे होंगे। इसी संशोधित संस्करण को 'चरक संहिता' के नाम से जाना गया। इसे नवीं शताब्दी ई। में एक कश्मीरी पंडित व द्रधबल ने पुनः संशोधित एवं सम्पादित किया और यही संस्करण अब हमें उपलब्ध है।

चरक संहिता एक विशाल ग्रन्थ है, जिसमें आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ से हमें उस प्राचीन काल में चिकित्सा-शास्त्र की पूरी जानकारी मिलती है।

रचनाकार

चरक संहिता निर्माण में निम्न रचनाकारों का योगदान है-

आचार्य अग्निवेश—चरक संहिता के मुख्य रचनाकार अग्निवेश ही हैं, जिनकी रचना का प्रतिसंस्कार करके चरकसंहिता का निर्माण किया गया।

आचार्य चरक—आचार्य चरक के द्वारा ही चरक संहिता प्रतिसंस्कृत हुई। चरक पंजाब देश में कपिल स्थल नामक ग्राम के निवासी थे। कायचिकित्सा के विशेषज्ञों को 'चरकाः' या 'चरक' कहा जाता है। आचार्य चरक को वैशम्पायन मुनि का शिष्य माना गया है। चरक का काल पहली सदी मानी गई है।

दृढ़बल—चरकसंहिता के कुछ भागों की रचना आचार्य दृढ़बल के द्वारा किया गया है। चरकसंहिता के चिकित्सास्थान के 17 अध्याय से लेकर कल्पस्थान तक की पूर्ति इनके द्वारा ही की गई है।

रचनाकाल

चरकसंहिता में पालि साहित्य के कुछ शब्द मिलते हैं, जैसे—अवक्रांति, जेंताक (जंताक-विनयपिटक), भंगोदन, खुड्डाक, भूतधात्री (निद्रा के लिये)। इससे चरकसंहिता का उपदेशकाल उपनिषदों के बाद और बुद्ध के पूर्व निश्चित होता है। इसका प्रतिसंस्कार कनिष्क के समय 78 ई. के लगभग हुआ।

त्रिपिटक के चीनी अनुवाद में कनिष्क के राजवैद्य के रूप में चरक का उल्लेख है। किंतु कनिष्क बौद्ध था और उसका कवि अश्वघोष भी बौद्ध था, पर चरक संहिता में बुद्धमत का जोरदार खंडन मिलता है। अतः चरक और कनिष्क का संबंध संदिग्ध ही नहीं असंभव जान पड़ता है। पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में मत स्थिर करना कठिन है।

चरकसंहिता का संगठन

चरक संहिता विषयों के अनुसार आठ भागों (जिनको 'स्थान' कहा गया है) में विभाजित है और इसमें 120 अध्याय हैं। ये आठ स्थान हैं-

- सूत्रस्थानम् (General principles)-30 अध्याय,

- निदानस्थानम् (Pathology)-8,
- विमानस्थानम् (Specific determination)-8 अध्याय,
- शरीरस्थानम् (Anatomy)-8 अध्याय,
- इन्द्रियस्थानम् (Sensory organ based prognosis)-12 अध्याय,
- चिकित्सास्थानम् (Therapeutics)-30,
- कल्पस्थानम् (Pharmaceutics and toxicology)-12 अध्याय, और
- सिद्धिस्थानम् (Success in treatment)-12 अध्याय।

चरकसंहिता आत्रोयसम्प्रदाय का प्रमुख ग्रन्थ मानी जाती है जिसमें कायचिकित्सा प्रमुखता के साथ प्रतिपादित है।

सूत्रस्थान

चरकसंहिता 'सूत्रस्थान' से आरम्भ होती है जिसमें आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन है। सूत्रस्थान सम्पूर्ण संहिता का दर्शन है। सूत्र स्थान के अध्ययन से ही सम्पूर्ण संहिता की रचना एवं प्रयोजन स्पष्ट रूप से समझ में आता है। सूत्र स्थान में 30 अध्याय हैं। सूत्रस्थान में समस्त विषयों को चार-चार अध्याय में विभक्त करके सात विषयों का प्रतिपदित किया गया है। सूत्रस्थान सभी आयुर्वेदीय ग्रन्थों का दर्पण है एवं इनमें वर्णित विषयों को ही अन्य ग्रन्थकारों ने अपने शब्दों में प्रकाशित किया है।

प्रथम चार अध्याय भैषज्य चतुष्टक के रूप में वर्णित है, जिसमें आयुर्वेद पठन-पठान की विशेषता, रोग का कारण, दोष, धातु, मलों की व्याख्या, पंच कर्म परिचय, भैषज्य कल्पना एवं आयुर्वेदीय वनस्पति द्रव्यों का वर्गीकरण आदि विषयों का विस्तृत वर्णन है। चार अध्याय कल्पना चतुष्टक के रूप में वर्णित हैं। इसमें वैद्य एवं चिकित्सा के चारों पादों का वर्णन, ऐषणाएं सम्बन्धी विचार तथा अन्य विविध विषयों का वर्णन दिया गया है। वात कलाकलिय अध्याय से लेकर उपकल्पनीय अध्याय तक वात आदि दोषों के प्रकोप एवं शमन के बारे में, स्नेहन, स्वेदन कर्म एवं उससे सम्बन्धित द्रव्य, तथा पंचकर्म योजना को सुन्दर रूप से प्रतिपादन की गई है।

आगे के चार अध्यायों में चिकित्सा प्रवृत्ति अध्याय से लेकर महारोग अध्याय तक दोष, धातु से उत्पन्न समस्त रोगों का वर्णन किया गया है। अष्टनिन्दनीय अध्याय से लेकर, यज्ञपुरुष अध्याय तक निन्दित पुरुषों का वर्णन, उनके निन्दनीय होने का कारण, अपतर्पण एवं सन्तर्पण चिकित्सा की विशेषता,

सन्यास, मूर्च्छा आदि मानसिक रोगों का कारण एवं राशि पुरुष की उत्पत्ति का सम्पूर्ण मोहक वर्णन प्राप्त है। आगे के चार अध्यायों में मधुर, अम्ल आदि छः रसों का वर्णन, द्रव्यों के गुण, विपाक, वीर्य आदि प्रभावी विवेचना, अन्नपान विषयक सम्पूर्ण उपायों का सुन्दर एवं व्यवस्थित वर्णन प्राप्त है। सूत्रस्थान का अन्तिम अध्याय में आयुर्वेद के प्रवर्धन एवं अंगों के विषयों को प्रकाशित करते हुए, सम्पूर्ण चिकित्सा शास्त्र की महत्ता को प्रतिपादित किया है।

निदान स्थान

नैदानिक दृष्टि से निदानस्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके आठों अध्यायों में रोगों हेतु तथा वातादि भेदों का विस्तृत वर्णन प्राप्त है जिसके अध्ययन से रोग निदान की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

सभी रोगों के निदानपंचक में हेतु आदि पांचों विषयों का विस्तृत वर्णन प्राप्त है। ज्वर, रक्तपित्त, गुल्म, प्रमेह, कुष्ठ, आदि रोगों की संख्या, भेद, कारण, लक्षण, साध्य-असाध्यता तथा चिकित्सा सूत्र का सरल एवं सुबोध भाषा में वर्णन प्राप्त होता है। सभी रोगों का कारण, सम्प्राप्ति, भेद, साध्य-असाध्यता, चिकित्सा सूत्र एवं निदान विषयक अन्य विषयों के सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है।

विमानस्थान

चिकित्सा जगत में प्रवीण होने के लिए विमानस्थान का समुचित ज्ञान बहुत आवश्यक है। विमानस्थान में आयुर्वेद के महत्वपूर्ण विषयों की व्यापक व्याख्या की गयी है। इस स्थान में आठ अध्याय हैं, जिसकी विशेषता निम्न है-

रस विमान अध्याय–मधुर-अम्लादि रसों के गुणधर्म, वातादि दोषों के भेद, उनके क्षय, वृद्धि में रसों का प्रभाव, तेल, घृत, मधु आदि द्रव्यों का शरीर पर प्रभाव तथा अष्ट आहार विध विशेष आयतन के अनुसार आहार विधि विधान का व्यापक वर्णन है।

त्रिविध कुक्षीय विमान अध्याय–कुक्षि का अर्थ उदर से है। आहार सेवन में मात्रा, अमात्रा, आम दोष से उत्पन्न, विसुचिका, अलसक आदि रोगों का कारण, लक्षण, चिकित्सा का वर्णन प्राप्त है।

जनपदोध्वस्नीय विमान अध्याय–जन समुदाय में व्याप्त होने वाले महामारी के कारण, लक्षण, एवं चिकित्सा सम्बन्धी विषयों को कहते हैं। इसके निवारण की सम्पूर्ण व्याख्या इस अध्याय में वर्णित है।

त्रिविध रोग विशेष विज्ञानी विमान अध्याय–इसमें प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आप्त उपदेश आदि परीक्ष्य विषयों के द्वारा रोग परीक्षण, पंच इन्द्रियों द्वारा रोगी परीक्षण की विधि का वर्णन है।

स्रोतों विमान अध्याय–सभी धातु, दोष एवं शरीरगत द्रव्यों को वहन करने वाले स्रोत एवं उनके भेदों, स्रोतों दुष्टि का कारण, लक्षण एवं चिकित्सासूत्र का उल्लेख इस अध्याय में सुगमता से किया गया है।

रोगानिक विमान अध्याय–रोग भेद, शारीरिक एवं मानस दोष, चतुर्विध अग्नि, प्रकृति आदि का व्यापक वर्णन है।

व्याधित रूपीय विमान अध्याय–इस अध्याय में गुरू, लघु, व्याधित पुरुषों के लक्षण, कृमि रोग निदान एवं चिकित्सा का वर्णन है।

रोग भिषग्जि जातीय विमान अध्याय–रोग निदान हेतु आचार्य परीक्षा, संभाषा का आयोजन, दसविध आतुर परीक्षा का सरल सुबोध ज्ञान इस अध्याय में मिलता है।

सारांश रूप में, यह अध्याय चिकित्सक वर्ग एवं आयुर्वेद ज्ञान हेतु उत्सुक जनों को आयुर्वेद का सम्पूर्ण ज्ञान कराता है।

शरीरस्थान

चरकसंहिता शरीरस्थान ज्ञान का अभ्यास ही उत्तम वैद्य का लक्षण है। शरीर-रचना के ज्ञान के बिना कोई भी चिकित्सा सफल नहीं होती। इस स्थान में आठ अध्याय हैं। शरीर स्थान के द्वारा मानव के शरीर की रचना का ज्ञापक ज्ञान होता है। इस स्थान की जानकारी के बिना चिकित्सा क्षेत्र में कार्य करना असम्भव है। इस अध्याय में शरीर की उत्पति, स्थिति एवं क्रमशः वृद्धि तथा चिकित्सीय पुरुष की परिभाषा का ज्ञान होता हैं। बिना चिकित्सीय पुरुष की चिकित्सा असम्भव है।

सृष्टि में मानव के प्रादुर्भाव का अनुभव होना इस अध्याय का महत्वपूर्ण विषय है। पंचमहाभूत, पंच भूतात्मक शरीर एवं मन का सूक्ष्म विवेचना है। इसी तरह गर्भोत्पत्ति की प्रक्रिया, प्रारम्भ से ही गर्भ शरीर का वर्णन, स्त्री एवं पुरुष गर्भ के लक्षण तथा इन गर्भों की उत्पति में हेतु का ज्ञान एक अद्भुत विज्ञान है। इसके अध्ययन से मनुष्य गर्भ के आदि एवं जीवन के अन्त का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। मानस प्रकृति के 16 भेद, गर्भ में प्रकृति ज्ञान, दोष, धातु, मलों की विवेचना, शरीर के विभिन्न अंगों एवं अवयव की संख्या, आकार, प्रकार, शरीर

में उसकी स्थिति, प्रसूति या प्रसव की क्रियाओं को एक सूत्र में पिरोया गया है। साथ ही बच्चों में होने वाले रोग, बालक संस्कार, पोषण विधि एवं बाल रोगों की चिकित्सा का ज्ञान इस अध्याय की विशेषता है। सम्पूर्ण मानव सृष्टि एवं शरीर रचना वर्णन इस अध्याय का वह नगीना है, जिसके अभाव में चिकित्सा रूपी आभूषण पूर्ण नहीं होता।

इन्द्रियस्थान

इन्द्रियस्थान में 12 अध्याय है, प्रत्येक अध्याय कि अपनी विशिष्टता है। आरिष्ट या मृत्युसूचक एवं अशुभ लक्षणों का चिकित्सा विज्ञान में अपना महत्व है। सम्पूर्ण इन्द्रिय स्थान में रोगों के अरिष्ट लक्षणें का वर्णन है। चिकित्सा जगत में अरिष्ट स्थान प्राग्ज्ञान (Prognosis) की दृष्टि से सर्वविदित है।

इन्द्रिय स्थान में वर्ण, स्वर, गंध, रस, स्पर्श चक्षु, स्रोत, घ्राण, रसना, मन, अग्नि, शौच, शीलता, आचरण, स्मरणशक्ति, विकृति धारणा शक्ति, बल, शरीर आकृति, रूक्षता, स्निग्धता, गौरव एवं आहार पाचन तथा आहार परिणाम संबंधी विभिन्न प्रकार के अशुभ लक्षणों का वर्णन सुन्दर वाटिका में सुसज्जित पुष्पों के समान किया गया है।

व्याधि का मूल रूप, वेदना, उपदेश, छाया, प्रतिच्छाया, स्वप्न, भूताधिकार, मार्ग में आरिष्ट जनक वस्तु को देखना, इन्द्रिय एवं इन्द्रिय विषय से सम्बधित शुभ–अशुभ लक्षणों को जानना एवं रोग के साध्य, असाध्यता एवं रोगी के जीवन मृत्यु के निर्णय में इन अरिष्ट लक्षणों का योगदान इन विषयों का इन्द्रिय स्थान में बुद्धिगम्य शब्दों में सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।

चिकित्सास्थान

चरक संहिता मुख्यतः कायचिकित्सा का प्रधान ग्रन्थ है। चिकित्सास्थान में रोगों की चिकित्सा से लेकर औषध कल्पना तक का सम्पूर्ण विधान वर्णित है। चिकित्सा स्थान में मुख्य 30 अध्याय हैं।

रसायन अध्याय के नाम से प्राप्त इस अध्याय में रसायन औषधि द्रव्यों का नाम, रसायन सेवन के सम्पूर्ण विधान का उल्लेख मिलता है। विविध रसायन प्रकरण, कुटि प्रवेश विधि हरितकी (हरण), आमलकी आदि रसायन द्रव्यों के गुण, कार्य औषधि निर्माण विधि एवं सेवन विधि का विस्तृत वर्णन, साथ ही आत्म शुद्धि के अंतरगत आचार्य रसायन जैसे–महत्वपूर्ण अध्यायों का विवरण प्राप्त है।

बाजीकरण अध्याय के अन्तर्गत पुरुषों में नपुंसकता व संतानोत्पत्ति के कारण, प्रकार आदि की विस्तृत जानकारी है। बाजीकरण औषधियों का प्रयोग व विभिन्न बाजीकरण औषधियों की सेवन विधि एवं संतानोत्पत्ति में बाधक होने वाले कारणों का निदान एवं चिकित्सा का विस्तृत वर्ण प्राप्त है।

ज्वर चिकित्सा अध्याय से लेकर अन्तिम अध्याय तक विभिन्न व्याधियॉ जैसे–ज्वर, रक्तपित्त, गुल्म, प्रमेह, दोषगत व्याधियॉ, मानसिक रोग, मदात्य व्याधियॉ, विषजन्य व्याधियां का व्यापक निदान, लक्षण, भेद, चिकित्सा संबंधित औषधि योग का विस्तृत वर्णन प्राप्त हैं।

चरक संहिता में चिकित्सा अध्याय के अध्ययन मात्र से उत्तम वैद्य के गुण प्राप्त हो सकते हैं।

कल्प स्थान

कल्पस्थान में 12 अध्याय हैं। सम्पूर्ण स्थान, वमन, विरेचन आदि पंचकर्मो के लिए द्रव्यों की कल्पना एवं पंचकर्म भेदों, पंचकर्म की क्रियाविधि आदि के सम्पूर्ण योजना का वर्णन है। मदनफल, जीमुतक, धार्मागव, कृतवेधन, त्रिवृत, आरग्वध, बिल्व, सप्तला, दन्ति, द्रवन्ति आदि सभी पंचकर्मों द्रव्यों की कल्पना, निर्माणविधि, भेद एवं गुणों का विस्तृत वर्णन प्राप्त है। वमन आदि पंचकर्मो के प्रत्येक चरण की प्रतिक्रिया, उत्तम परिणाम के लक्षण आदि विषयों का व्यापक वर्णन है।

यह सर्वविदित है कि शोधित पुरुषों में व्याधि के आने की सम्भावना नहीं होती, अत: कल्पस्थान चिकित्सा की दृष्टि से मुख्य शल्यकर्म (मेजर ऑपरेशन) के बराबर स्थान रखता है।

इसमें 12 अध्याय हैं। इस स्थान के सम्पूर्ण अध्यायों में भी पंचकर्मार्थ द्रव्यों की कल्पना, पंचकर्म क्रम, अतियोग और अयोग और सम्यक् योग के लक्षण का व्यापक वर्णन प्राप्त होता है। रोग निवृत्ति, निदान के लिए पंचकर्मो का सम्यक अध्ययन तथा उसमें उत्पन्न उपद्रवों की जानकारी एवं चिकित्सा आवश्यक होती हैं। पंचकर्मो की 3 अवस्था–पूर्वकर्म, प्रधानकर्म, पश्चात् कर्म की क्रमबद्ध व्याख्या प्राप्त है। पंचकर्मार्थ योग्य, अयोग्य व्यक्तियों का चयन एवं पंचकर्मों में प्रयुक्त उपकरण, तथा पंचकर्मो में अयोग्य व्यक्तियों में भी शोधन के विधि की प्रस्तुति अपने आप में स्वर्णिम है।

चरक के चिकित्सा-विज्ञान का विषय

अपने समय के आयुर्वेदिक चिकित्सा-शास्त्र के वर्णन में चरक ने विभिन्न विषयों का बृहद् विवेचन किया है। उदाहरण-स्वरूप भ्रूण की उत्पति एवं विकास, मानव-शरीर की शरीर-रचना-विज्ञान, शरीर की कार्यविधि तथा शरीर के तीन पदार्थ- वात, पित्त, कफ के असन्तुलन अथवा अन्य किसी कारण शरीर की कार्यविधि में अव्यवस्था, विभिन्न रोगों का निदान, वर्गीकरण, विज्ञान निरूपण, पूर्वानुमान तथा उपचार एवं शरीर के कायाकल्प विज्ञान जैसे–विषयों का वर्णन किया है।

चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थियों का चयन एवं दीक्षा

आयुर्वेदिक चिकित्सा-शास्त्र के अध्ययन के इच्छुक प्रत्याशी को, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक अपेक्षाओं को पूरा होने की दशा में भी विद्यार्थी बनने की आज्ञा प्रत्याशी द्वारा धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न करने के पश्चात ही मिलती थी। इस धार्मिक अनुष्ठान में गुरु तथा अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति तथा प्रार्थना तथा पवित्र अग्नि के समक्ष देवताओं को फूल अर्पित करना सम्मिलित था। इस समारोह का चरम बिन्दु उस समय होता था जब गुरु अपने शिष्य को पवित्र अग्नि के तीन फेरे लगवा कर उसे निम्न शपथ दिलाता था–

मैं जीवन भर ब्रह्मचारी रहूँगा। ऋषियों की तरह मेरी भेष-भूषा होगी। किसी से द्वेष नहीं करूँगा। सादा भोजन करूँगा। हिंसा नहीं करूँगा। रोगियों की उपेक्षा नहीं करूँगा। उनकी सेवा अपना धर्म समझूँगा। जिसके परिवार में चिकित्सा के लिये जाऊँगा उसके घर की बात बाहर नहीं कहूँगा। अपने ज्ञान पर घमण्ड नहीं करूँगा। गुरु को सदा गुरु मानूगा।

(अर्थ अब अध्यापन विधि। आचार्य जब शिष्य को पढ़ाने का मन बना लेने के बाद आचार्य को परीक्षा करनी चाहिए कि शिष्य में निम्नलिखित गुण हैं या नहीं- बहुत ही शांत स्वभाव के, श्रेष्ठ गुणों वाले, सीधे कामों में शामिल न होने वाले, सीधी आँखों वाले, मुँह और नाक के किनारे (आँखों, नाक और मुँह के किसी दोष के बिना) के पतले, लाल होने पर, और स्पष्ट जीभ, दांतों और होठों में कोई असामान्यता नहीं, नाक उच्चारण के साथ बात नहीं करना, बिना किसी कारण के, बिना घमंड, बुद्धिमान, तार्किक तर्क और स्मृति से संपन्न, व्यापक दिमाग वाला, चिकित्सकों के परिवार में पैदा हुआ या वैज्ञानिक और वैज्ञानिक वैज्ञानिक व्यवहार के आचरण के साथ जागरूक। किसी भी शारीरिक विकृति या

इंद्रियों की विकलांगता, विनम्रता, ज्ञान को सुरक्षित रूप से रखना, असहयोग करना, बिना क्रोध और व्यसनों के विचारों को समझने की क्षमता रखना, विनम्रता, पवित्रता, अच्छे आचरण, स्नेह, निपुणता और ईमानदारी के साथ संपन्न होना अध्ययन में, बिना किसी व्याकुलता के विचारों और व्यावहारिक ज्ञान की समझ के लिए समर्पित, शिक्षक के सभी निर्देशों का पालन करने और संलग्न होने के लिए सभी प्राणियों के प्रति कोई लालच या आलस्य नहीं।

भ्रूण शास्त्र

भ्रूण के प्रजनन एवं विकास के सम्बन्ध में यह बताया गया है कि भ्रूण-निर्माण में पुरुष-स्त्री दोनों ही--पुरुष अपने वीर्य अथवा स्त्री अपने रज द्वारा योगदान करते हैं। भ्रूण का नर-मादा होना उसमें पुरुष के वीर्य अथवा स्त्री के रज की प्रधानता पर निर्भर होता है। भ्रूण का उभयलिंगी होना दो दशाओं में संभव है या तो भ्रूण में मनुष्य के वीर्य तथा स्त्री के रज में समानुपात हो अथवा वीर्य की प्रजनन-शक्ति समाप्तप्रायः हो चुकी हो। यदि परिणामी मूल दो या उससे अधिक अंशों में विभाजित हो जाएं तो दो या उससे अधिक जुड़वाँ बच्चों को जन्म देता है, इनमें से प्रत्येक के लिंग का निर्धारण गर्भ में मुनष्य के वीर्य एवं स्त्री के रज की सापेक्षिक प्रधानता द्वारा होता है।

भिन्न-भिन्न महीनों में भ्रूण के विकास का वर्णन भी किया गया है। प्रथम मास में भ्रूण की अवलेह के समान आकृति होती है, दूसरे मास में यह कठोर हो जाती है, तीसरे में पाँच विशिष्ट उभार (अभिवृद्धियाँ) प्रकट हो जाती हैं तथा अंगों का मामूली विभेदीकरण होने लगता है। चौथे महीने में अंगों का विभेदीकरण अधिक निश्चित हो जाता है तथा हृदय के कार्य के साथ भ्रूण में चेतनता भी विकसित हो जाती है। पाँचवें महीने में यह चेतना और अधिक स्पष्ट हो जाती है। छठे महीने में बुद्धि का विकास होना भी शुरू हो जाता है। सातवें में अंगों का विकास पूर्ण हो जाता है। बच्चे का जन्म नवें या दसवें महीने में होता है।

भ्रूण-विकास से सम्बन्धित चरक संहिता में दिया गया वर्णन तत्कालीन अन्य प्राचीन सभ्यताओं के चिकित्सा-विज्ञान के ग्रन्थों में दिये गए वर्णन से बहुत अधिक अग्रवर्ती है। हमारे वर्तमान ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में इसमें कुछ सुधार वांछित हैं, किन्तु पश्चिमी संसार, चरक संहिता जैसी उपयुक्त व्याख्या अगले 1500 वर्ष तक भी न कर पाया।

शरीर के विभिन्न भाग माता अथवा पिता से व्युत्पन्न हुए समझे जाते हैं। त्वचा, रक्त, मांस, नाभि, हृदय, फेफड़े, यकृत, प्लीहा, स्तन, श्रोणि, उदर, आँतों तथा मज्जा की व्युत्पत्ति माता से होती है, सिर के बाल, नाखून, दांत, अस्थि, शिरा तथा वीर्य आदि की पिता से। भ्रूण की वृद्धि एक-दूसरे के ऊपर क्रमिक पर्तो के चढ़ने से होती है। विभिन्न अंगों के प्रकट होने के क्रम के बारे में विवेचकों ने अलग-अलग सम्मतियाँ दी हैं, किन्तु चरक ने जोर देकर यह कहा है कि सभी ज्ञानेन्द्रियाँ तथा अंग तीसरे महीने में ही प्रकट होने लगते हैं।

जन्म से पूर्व ही भ्रूण के लिंग का पता लगाने के लिए भिन्न-भिन्न लक्षण बताये गये हैं। यदि माता के दायें स्तन में पहले दूध उतर आये वह चलते समयं

इस समारोह के पश्चात वर्षो तक शिष्य अपने गुरु तथा स्वामी के जीवन से जुड़ा रहता था तथा उसके परिवार का एक सदस्य बन जाता था। वह अपने गुरु की सेवा करता था। रोगियों की इलाज करते हुए अवलोकन करता था, विविध प्रकार की कार्य-प्रणालियों, साज-सामान और शल्य-उपकरणों से परिचित हो जाता था तथा अपने गुरु की प्रत्यक्ष देखरेख में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करता था। कई वर्षो के पश्चात जब गुरु-शिष्य की प्रगति तथा आचरण से संतुष्ट हो जाता था तो वह शिष्य की परीक्षा लेता था। शिष्य के परीक्षा में सफल हो जाने पर गुरु राजा से उस शिष्य को चिकित्साशास्त्र का व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए अनुज्ञा प्रदान करने की सिफारिश करता था। राज्य चिकित्सक के पद पर नियुक्ति ही किसी चिकित्सक की सर्वोच्च आकांक्षा होती थी। अन्य बातों के अतिरिक्त राजचिकित्सक विष देने की संभावना के विरुद्ध राजा की रक्षा करने के लिए भी उत्तरदायी होता था। इस संकट से कोई भी राजा बहुत ही कम मुक्त रहता था। इसके अतिरिक्त जब राजा किसी शत्रु के विरुद्ध अपनी सेना के साथ रवाना होता था, तब चिकित्सक भी उसकी सेना के साथ जाता था। दायाँ पाँव उठाये, उसकी दायीं आँख बड़ी लगे, वह नर नामों वाली वस्तुओं की इच्छा करे, उसे स्वप्न में नर नाम के फूल दिखाई दें, उसके चेहरे पर रौनक आ जाये, वह स्त्रियों की संगति में अधिक रहना चाहे, भ्रूण के कारण उसका उदर बायीं ओर को अधिक निकला हुआ हों, उसका स्वभाव एवं क्रियायें पुरुष-सरीखी प्रतीत हों तो समझना चाहिये कि वह लड़के को जन्म देगी और इनके विपरीत दिशाओं में लड़की को।

शरीर-रचना-विज्ञान

मनुष्य की शरीर-रचना के बारे में किया गया चरक का वर्णन काफी अल्पविकसित है। शरीर में दांत एवं नाखूनों सहित अस्थियों की कुल संख्या 360 बताई गई है। 32 दांत होते हैं। 32 दाँतों के कोटर, 20 नाखून, 60 अंगुलास्थियां, 20 लम्बी अस्थियां, 4 लम्बी अस्थियों के आधार, 2 एड़ी, 4 टखने की हड्डी, 4 कलाई की हड्डी, 4 अग्रबाहु की हड्डी, 4 टांग की हड्डी, 2 बाहु की कोहनी के पटल, 2 जांघ की खोखली हड्डी, 5 स्कन्धास्थि, 2 हंसली, 2 नितम्बफलक, 1 सार्वजनिक अस्थि, 45 पीठ की हड्डियाँ, 14 वक्षास्थि, 24 पसलियाँ, 24 गर्तों में स्थित गुलिकाएँ, 15 कण्ठास्थि, 1 श्वास-नली, 2 तालुगर्त, 1 निचले जबड़े की हड्डी, 2 जबड़े की आधार-बन्ध अस्थि, 1 नाक, गालों एवं भौंहों की हड्डी, 2 कनपटी तथा 4 पान के आकार की कपालास्थि। (सुश्रुत के अनुसार कुल मिलकर अस्थियों की संख्या 300 है)।

शरीर की माँसपेशियों को केवल माँसलपिंड ही बताया गया है। ऐसा समझा जाता था कि हृदय के विभिन्न अंगों को जाने वाली दस वाहिकाएँ होती है। मस्तिष्क की रचना तथा कार्यो का वर्णन लगभग नहीं के बराबर है। यद्यपि फेफड़ों का उल्लेख है, किन्तु उन्हें श्वसन से किसी प्रकार भी सम्बन्धित नहीं माना गया है।

शरीर-क्रिया-विज्ञान

चरक के अनुसार जो भोजन हम खाते हैं तथा हमारा शरीर भी मिट्टी, अग्नि, जल, वायु तथा आकाश नामक पाँच पंचतत्त्वों (भूत) से बना होता है। शरीर में ये पंचतत्त्व रस, रक्त, माँस, वसा, अस्थि मज्जा तथा वीर्य नामक वस्तुओं (धातुओं) के रूप में होते हैं। भोजन का कार्य इन धातुओं का पोषण करना, इनके संतुलन को बनाए रखना तथा पाचन-क्रिया का जारी रखना है। जो भोजन खाया जाता है, वह पहले एक रस में परिवर्तित होता है, तत्पश्चात रक्त, मांस तथा अन्य धातुओं में। पाचन-प्रक्रिया के दौरान एक हल्की प्रतिक्रिया होती है जिससे एक झागदार पदार्थ ृकफ' बनता है। कुछ समय पश्चात जब भोजन अधपचा होता है, तब एक खट्टी प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। इस प्रतिक्रिया द्वारा आँतों में भोजन से एक तरल पदार्थ-ृपित्त' बनता है। आँतों में थोड़ा और नीचे, पचा हुआ भोजन एक सूखे अम्बार में बदल जाता है और इस प्रक्रिया में एक कटु एवं कठोर प्रतिक्रिया आरंभ होती है, जिसमें वात (वायुद्ध उत्पन्न होती है। इस प्रकार उपर्युक्त तीन दोष उत्पन्न होते हैं।

भाष्य

'चरकतात्पर्यटीका' इस ग्रन्थ की सर्वप्रसिद्ध टीका है। इसे 'आयुर्वेददीपिका' भी कहते हैं। इसके रचयिता चक्रपाणिदत्त (1066) हैं। अन्य भाष्यग्रन्थ हैं-

- भट्टारक हरिश्चन्द्र द्वारा रचित चरकन्यास (6ठी शताब्दी)
- जेज्जट कृत निरन्तरपदव्याख्या (875 ई),
- शिवदास सेन कृत तत्त्वचन्द्रिका (1460 ई)
- योगीन्द्रनाथसेन कृत चरकोपस्कार
- नरसिंह कविराज कृत चरकतत्त्वप्रकाश
- गंगाधर कविरत्न द्वारा रचित जल्पकल्पतरु (1879)

चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता

चरकसंहिता, आयुर्वेद का सबसे पुराना ज्ञात ग्रन्थ है तथा इसका सुश्रुतसंहिता में अनुपालन हुआ है। कुछ विषयों को छोड़कर दोनों ने समान प्रकार के विषयों की चर्चा की है।

इन दोनों में विशेष अन्तर यह है कि सुश्रुतसंहिता में शल्यक्रिया का आधार रखा गया है जबकि चरकसंहिता मुख्यत: चिकित्सा (मेडिसिन) तक ही सीमित है।